संस्कृत-विद्यापीठ-प्रकाशनमालाया' सप्तविंश पुष्पम्

वुन्देलखण्डीय-'आनन्दराय'-महीप-सभापण्डित-
श्रीनरहरिदीक्षित-सूनु-
पण्डित-कवि-श्रीसामराजदीक्षित-प्रणीत

श्री ामचरि म

(नाटकम्)

प्रधानसम्पादक —

डॉ० मण्डनमिश्र
मीमासा-दर्शन-साहित्याचार्य
एम० ए०, पी-एच० डी०, प्राचार्य

मूलग्रन्थसम्पादक —

प्रो० बाबूलालशुक्ल शास्त्री
एम० ए०, साहित्याचार्य
मध्यप्रदेश-साहित्य-अकादमी-सम्मानित
सस्कृत-प्राध्यापको विभागाध्यक्षश्च —
शासकीयस्नातकोतर-महाविद्यालय, शाजापुर (म० प्र०)

सम्पादक प्राक्कथनलेखकश्च —

डॉ० रुद्रदेवत्रिपाठी, आचार्य
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्०,
अनुसन्धान-प्रकाशन-विभागाप्रवाचकोऽध्यक्षश्च

श्री ा हादुरशास्त्री- ेन्द्रीय- ंस -िद्या ीठम्

शहीद जीतसिंह मार्ग, कटवारिया सराय, नई दिल्ली-११००१६

अत्र छन्दसा प्रयोगनैपुण्यमपि विविधवृत्तप्रयोगैर्ज्ञायते। (यत्र दण्डकस्य भवभूतिमनुसृत्य विशिष्ट प्रयोग कृत कविनाऽनेन)। प्रकृतिवर्णनमपि कवेरसामान्य कवित्व प्रकटयति। अत कवेरिय कृति प्रौढा सकलशास्त्रकलाभिज्ञत्व प्रकटयितु समर्थेति निश्शङ्क कथयितु शक्यते ।

एतस्य सम्पादनकर्मणि साहाय्यमाचरद्भ्य उपर्युक्तसस्थानाधिकृद्भ्य साभिनन्दन धन्यवादम्। एतस्य प्रकाशनादिषु च परम साहाय्य कुर्वता विद्यापीठस्य प्राचार्याणा डॉ० सी० आर० स्वामिनाथमहाभागाना तथा सुसम्पाद्य प्राक्कथनलेखनेन सम्भूष्य च शोधप्रभाया प्रकटीकुर्वता डॉ० रुद्रदेवत्रिपाठि एम-ए०, पी० एच-डी०, डी० लिट्० महाभागाना सुहृत्तमानामपि चामन्दमुपकारभारमुद्वहन् धन्यवादाँश्चार्पयन् सस्मरामि सौजन्यम् ।

एतस्मिन् सस्करणे प्रमादजातानि मुद्रणादिजातानि च स्खलितानि सशोध्य विद्वाँस पाठका लाभान्विता भवेयुरस्य परिशीलनेन कुर्वन्तु च ममेम श्रम सफलमिति विनिवेद्यान्ते स्मापतिमुमापतिश्च प्रार्थये यदेतत् नाटक सहृदयमनस्सु परमा मुदमादधत् विलसतु । इति ।

विदुषामाश्रव

बाबूलालशुक्ल, शास्त्री

प्राक्कथन

सम्कृत नाट्य-माहित्य की विशाल मणिमाला मे एक और अपूर्व तथा अव-तक अप्रकाशित **"श्रीदामचरितम्"** नामक नाटकमणि का सयोजन इस नाटक के प्रकाशन से हो रहा है, यह सभी साहित्यानुरागियो के लिये आनन्द का विपय हे ।

प्रस्तुत नाटक के उद्धार का श्रेय है— मध्यप्रदेश के मस्कृत-साहित्यसेवी एव अनेक दुर्लभ-ग्रन्थो के उद्धार तथा सुसम्पादन मे तल्लीन विद्वद्वर्य प्रा० श्री बाबूलालजी शुक्ल, शास्त्री, एम० ए०, साहित्याचार्य को जिन्होने अतीव परिश्रम-पूर्वक उज्जैन तथा पूना के प्राच्यग्रन्थसग्रहालयो से पाण्डुलिपिया प्राप्त करके उक्त नाटक का समुचित सम्पादन किया है ।

सम्कृत-साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्र-स्वरूप महान् कवि, सफल नाटक-कार एव भगवतीत्रिपुरमुन्दरी के परम उपासक **श्रीसामराज दीक्षित** की यह कृति अपने विपय की विशिष्टता, नाट्यशास्त्रीय लक्षणो के पूर्ण निर्वाह, अपूर्व कल्पना-सौष्ठव, विशिष्ट एव विचित्र घटनाक्रम, विविध भापा-प्रयोग, अलकृत गद्य-पद्य-विन्याम तथा छन्द-प्रयोग-प्रावीण्य आदि के कारण नाटक-साहित्य मे अपनी म्वतन्त्र सत्ता स्थिर करती है । इसी दृष्टि से साम्प्रतिक समीक्षा-मरणि का साह-जिक निर्वाह भी ममुचित समझ कर हम कतिपय तथ्यो का परिशीलन प्रस्तुत कर रहे है, विश्वाम है, पाठकगण इसमे ग्रन्थकार एव ग्रन्थ की गरिमा का कुछ आभास पा सकेगे ।

□ प्रस्तुत नाटक के रचयिता 'श्रीसामराज दीक्षित'

[illegible]

अन्त साक्ष्यो से भी विदित होता है कि—

(१) श्री सामराज दीक्षित दाक्षिणात्य ब्राह्मणकुल मे उत्पन्न 'विन्दुपुरन्दरे' कुलोपाधि से युक्त विद्वद्वर **श्री नरहरि दीक्षित** के सुपुत्र थे। अपनी पाण्डित्य-प्रतिभा तथा भगवती त्रिपुरसुन्दरी की अनन्य कृपा से ये भूमण्डल को भासित करते हुए बुन्देलखण्ड के महादानी शासक **श्री आनन्दराय** महाराज के आश्रय मे **सभा-पण्डित** के रूप मे बहुत वर्षो तक रहे।[1] विद्वानो के गुणातिशय का समादर करने तथा उदारता-पूर्वक दान देने मे प्रख्यात[2] श्री आनन्दराय नृपति ने आपको जो भूमि और ग्राम-क्षेत्रादि उपहृत किये थे उनका स्वामित्व किसी न किसी रूप मे आज तक श्रीदीक्षित जी के वशजो के पास चला आ रहा है। मथुरा मे **श्री बालकृष्ण जी दीक्षित** इसी परिवार के माने जाते है।

(२) श्री दीक्षितजी ने अपना उत्तरकाल मथुरा मे व्यतीत किया था। आप एक महान् सिद्ध उपासक थे। श्री दीक्षित के अनन्य उपासक होने के कारण ही आपने अपनी कृतियो मे दो स्तोत्र एव एक प्रमुख पूजाग्रन्थ 'पूजारत्न' की भी रचना की थी। जो कई पटलो मे विभक्त है। इस ग्रन्थ का महत्त्व आज भी उस सम्प्रदाय मे अत्यन्त अधिक है। नवरात्रि की उपासना मे उसकी पद्धति का आश्रय लेकर पूजाएँ सम्पन्न की जाती है।

(३) इनका दीक्षानाम 'सत्यानन्दनाथ' था। इसी से ज्ञात होता है कि ये पूर्णाभिषिक्त थे, क्योकि इस दीक्षा के समय ही आनन्दनाथान्त नाम तथा गुरु-पादुकाम्नाय का उपदेश होता है।

श्रीसामराज दीक्षित ने 'धूर्तनर्तक' प्रहसन के सूत्रधार और नटी के सवाद के रूप मे प्रस्तुत आरम्भिका मे सूत्रधार के मुख से नान्दी के पश्चात् कहलाया है कि—"भगवान् नरसिंह की यात्रा के अवसर पर भूसुरो के समूह ने मुझे कहा है कि मैं श्रीसामराज दीक्षित प्रणीत धूर्तनर्तक प्रहसन का अभिनय कराऊ।" इत्यादि। तथा वही यह एक आर्या भी प्रस्तुत की है —

नरहरिकुलाब्धिचन्द्रो नरहरिमान्यो हि सामराजोऽय ।
नरहरिवन्द्यनतुश्रीर्नरहरिचरणाब्जगोलम्ब ॥४॥

---

(१) प्रस्तुत नाटक मे ही नटी की यह उक्ति द्रष्टव्य है —
'नटी-अथ क पुन आनन्दरायो यस्य कर्णमहशस्य त्रिभुवनजनकर्णप्राघुणिका कीर्ति स ?' इत्यादि।

(२) इस सम्बन्ध मे मथुरास्थित प० श्री गोविन्दजी चतुर्वेदी, (दण्डी घाट स्थित) ने तथा पू० श्री अमृतवाग्भव आचार्य जी ने भी यही बताया है।

(७) आर्या त्रिशती ओर (८) शृङ्गारामृतलहरी" ये आठ कृतिया प्राप्त होती है। इनमे क्रमाक ३ तथा ४ सख्यावाली कृतियाँ 'पूजारत्न' ग्रन्थ मे भी हे अत कुल ६ रचनाएँ मुख्यत इनकी हे, ऐसा मानना उपयुक्त होगा।[1]

श्रीसामराज दीक्षित का वैदुष्य

श्रीदीक्षित की रचनाओ के अवलोकन से यह स्वत सिद्ध हो जाता है कि ये विभिन्न शास्त्रो के मर्मज्ञ विद्वान् थे। इनके द्वारा प्रणीत 'धूर्तनर्तक' एव प्रस्तुत नाटक के प्रस्तावनाशो से ज्ञात होता है कि श्रीदीक्षित साहित्यशास्त्र, तर्कशास्त्र एव मन्त्रशास्त्र के प्रौढ ज्ञाता थे तथा प्राकृत, शौरसेनी, महाराष्ट्री, पेशाची आदि भाषाओ पर भी पूर्णाधिकार रखते थे।

साहित्य-शास्त्र मे अलङ्कार-विधान का अनुराग तथा गद्य-पद्य-निर्माण मे अपूर्व कुशलता इनके कवित्व का मनोरम रूप है। वर्ण्य-विषय को अतिसूक्ष्म-चिन्तन-पूर्वक प्रस्तुत करने की कला एव विशाल शब्दसागर का अवगाहन कर नये-नये पदार्थो के निरूपण की क्षमता यहा देखते ही बनती है, गद्यच्छटा मे सभी प्रकार की गद्य-विधाओ का समुचित सन्निवेश तथा पद्य-विधान मे छोटे-बडे छन्दो का प्रयोग, लघु एव दीर्घ समासो का समावेश, अनुप्रास-यमकादि शब्दालङ्कारो की झङ्कार तथा उपमा-रूपकादि अर्थालङ्कारो का अनुपम विन्यास प्रस्तुत कवि के शास्त्र-तत्त्व-निष्णात होने की पूर्णरूपेण अभिव्यञ्जना करते है। तभी तो कवि अपनी वचोमाधुरी की स्वय प्रशसा करने मे सङ्कोच नही करता। सूत्रधार का कथन है कि —

तनुते निर्वृतिं यस्य वाचो लोकस्य कर्णयो।
रतिप्रमत्तवनिता-कङ्कणक्वाणमञ्जुला ॥३॥

वेल्लत्कल्लोलमालातटघटनमिलत्फेनसन्तानमूर्च्छत्-
क्षीरोदक्षोददीक्षावितरणपटवो यस्य वाचा प्रपञ्चा।
केषा शेषाहिगौरा हृदयपटकुटीमेत्य साहित्यरज्ज्यत्-
सौहित्याना रसाना विदधति न भरै पूर्णमानन्दसिन्धुम् ॥

नाटक की पूर्तिरूप पुष्पिका मे —

प्राय प्रायमिमा भजन्तु कवयो नैलिम्पवृत्ति भुवि,
स्फीता दीक्षित सामराजविदुष सूक्ती सुधास्यन्दिनी। (५।२५ इत्यादि)

१- इनकी अन्य रचनाओ का भी कुछ अनुमान किया जाता है, किन्तु वह विषय मे नामसाम्य ही हो सकता है, अत यह गवेषणार्ह है। द्रष्टव्य कैटलागरम्।

को प्रतिबोध देने मे सर्वथा समर्थ है । उपकार का डिण्डिमघोष न करते हुए 'दायाँ हाथ दे और बाये हाथ को ज्ञात न हो' इसकी अभिव्यक्ति भी श्रीकृष्ण द्वारा द्वारिका मे श्रीदामा को प्रत्यक्ष कुछ न देकर अपने आदेश से श्रीदामपुरी का निर्माण करवाना एक प्रभावपूर्ण दृष्टान्त है, जो कि कवि ने नाटक के माध्यम से प्रतिपादित किया है ।कृपा करने पर भी अहम्भाव का अभाव यहा व्यक्त है ।

नाटक का मूल वृत्त

अतिप्रसिद्ध ग्रन्थ 'श्रीमद्भागवतमहापुराण' के दशमस्कन्ध मे महर्षि वेदव्यास ने दो अध्यायो मे सुदामा के चरित से सम्बन्धित नाटकोक्त कथा का वर्णन किया है। यत्र तत्र कृष्णकथा के प्रसङ्ग से अन्य ग्रन्थो मे भी इस प्रसङ्ग की चर्चा हुई है । हिन्दी एव अन्य भारतीय भाषाओ के कवि भी सुदामा के चरित्र की प्रस्तुति मे पीछे नही रहे है । किन्तु यह अवश्य कहा जा सकता है कि सस्कृत नाटक के क्षेत्र मे श्रीसामराज दीक्षित ही ऐसे प्रथम टीकाकार है जिन्होने श्रीदामा के चरित को नाटक के रूप मे प्रस्तुत किया ।

सक्षेप मे अन्य पात्रो की सहायता से विषय-वस्तु को प्रसगोचित परिवेष मे सकलित कर यथावसर कल्पना का पुट देते हुए मूलवृत्त को उज्ज्वल बनाया गया है । कथानक का सार इस प्रकार है —

दय के पश्चात् श्रीदामा जाने की अनुमति लेकर विदा हो जाते हे । मार्ग मे गालव श्रीकृष्ण द्वारा कुछ भी न देने की चर्चा करता है किन्तु श्रीदामा इस प्रसग को 'अच्छा ही हुआ' यह कहकर टाल देता है। अपने गाव पहुचने पर दोनो देखते है कि पर्णशाला के स्थान पर महल बना हुआ है, दोनो विस्मित हो जाते है तभी कञ्चुकी आकर सारी घटना को स्पष्ट करता है । श्रीकृष्ण अपने मित्र से मिलने की इच्छा से विमान द्वारा श्रीदामपुर पहुचते है, वहा आर्या वसुमती एव श्रीदामा रुक्मिण्यादि परिकर सहित श्रीकृष्ण का स्वागत करते है और भरत वाक्य के साथ नाटक पूर्ण होता है ।

☐ सस्कृत-भाषा एव लोकभाषाओ मे 'सुदामाचरित'

श्रीमद्भागवत महापुराण के अनुसार

हुई। ब्राह्मण ने गुरुगृहवास के समय हुई कृष्ण की मैत्री से अपने भाग्य को सराहा और 'साक्षात् ब्रह्मस्वरूप कृष्ण का अध्ययन के लिए गुरुगृह मे रहना एक विडम्बन ही था' ऐसा माना। यहा एक अध्याय पूर्ण हो जाता है।

दूसरे अध्याय मे श्रीकृष्ण कुछ मुस्कुराते हुए अपनी भाभी द्वारा भेजे गये उपायन (भेट) को मागते हैं। सकोचवश ब्राह्मण कुछ न कहकर नीचा मुह किये चुप बैठा रहता है। तब भगवान् स्वय अपने मित्र और उसकी पतिव्रता पत्नी की कामना को पूर्ण करने की इच्छा से उन पृथुको की पोटली को खीच लेते है और 'अहो ! यह उपायन मेरे लिये भेजा गया है, यह मुझे बहुत प्रिय है, इन तण्डुलो से मै और विश्व तृप्त हो जाएगे' ऐसा कहते हुए एक मुट्ठी भरकर खा गये और जब दूसरी मुट्ठी खाने लगते है तो लक्ष्मी उनका हाथ पकड लेती है। लक्ष्मी कहती है कि 'हे विश्वात्मन् ! इस लोक मे अथवा परलोक मे मनुष्य को सर्वविध सम्पत्ति प्राप्ति के लिये आपको सन्तुष्ट करने हेतु इतना ही पर्याप्त है।' उस रात्रि मे ब्राह्मण वही कृष्ण के महल मे रहता है और स्वय को स्वर्ग मे रहते हुए के समान मानता है।

मे भी इस सम्बन्ध मे कुछ कहा गया हे। विशाल सस्कृत-साहित्य की प्रवृत्तियो मे व्याप्त स्तुतिसाहित्य मे भगवान् श्रीकृष्ण की भक्तवत्सलता का जहा-जहा आख्यान हुआ है, उसमे भी सुदामा का स्मरण होता ही रहा हे। दक्षिण के मूर्धन्य कवि श्रीवेदान्तदेशिक ने 'कुचैलमुनि' का स्मरण 'वैराग्य-पञ्चकम्' के प्रथम पद्य मे इस प्रकार किया है —

क्षोणीकोण-शताशपालनकलादुर्वारगर्वानल—
क्षुभ्यत्क्षुद्रनरेन्द्र-चाटु-रचना धन्या न मन्यामहे।
देव सेवितुमेव निश्चिनुमहे योऽसौ दयालु पुरा,
धानामुष्टिमुचे कुचेलमुनये धत्ते स्म वित्तेशताम् ॥ इत्यादि ।

□अन्य भारतीय भाषाओ मे 'सुदामा-चरित'

हिन्दी भाषा के 'सुदामा-चरित'

कथा का इतिवृत्तात्मक वर्णन अपेक्षित था, वहा दोहा छन्द का प्रयोग मर्मस्पर्शिता को बढाता है। अलकारो का सहज प्रयोग तथा काव्योचित सौन्दर्य के साथ हृदय के उन्मुक्त भावो की अभिव्यक्ति उत्तम है तथा भाषा का प्रवाह अत्यन्त हृदयग्राही है। विषय की प्रस्तुतिगत मनोरमता के कारण श्री नरोत्तमदास के कतिपय छन्द तो हजारो नर-नारियो को कण्ठस्थ-से हैं। एक दो उदाहरणो से यह बात और भी स्पष्ट हो जाएगी। यथा —

सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय !, ताको कहा अब देति है सिच्छा ?
जो तप कै परलोक सुधारत, सम्पति की तिनके नहि इच्छा।
मेरे हिये हरि के पद-पङ्कज, बार हजार लै देखु परिच्छा,
औरनि को धन चाहिये बावरि, ब्राह्मण को धन केवल भिच्छा ॥

□ □ □ □ □ □

सीस पगा न झँगा तन मे प्रभु !, जानै को आहि, बसै केहि ग्रामा,
धोती फटी-सी लटी दुपटी अरु, पाय उपानह की नहि सामा।
द्वार खडो द्विज दुर्बल एक, रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा,
पूछत दीन-दयाल कौ धाम, बतावत आपनो नाम सुदामा ॥[1]

हलधरदास और भूधरदास ने अपने सुदामाचरित्रो मे एक ही छन्द 'छप्पय' का प्रयोग किया है, जब कि आलम कवि ने 'ककुभ' छन्द को व्यवहृत किया है। वीर वाजपेयी ने विविध छन्दो मे इस काव्य को ग्रथित किया है। इन कवियो ने सुदामा और ब्राह्मणी सुदामा पत्नी के चरित्र-चित्रण मे यत्र तत्र परिवर्तन और परिवर्द्धन करते हुए कथासूत्र को रोचक बनाने का पूरा प्रयत्न किया है।[2]

आन्ध्र भागवतकार पोतन्ना (पोतनामात्य, पोतराज) ने १५ वी शती मे [illegible] भागवतमहापुराण के चार प्रमुख भक्तो के वर्णन मे 'कुचेल' (सुदामा) का वर्णन [illegible] भावानुबन्ध के साथ किया है। वहा कुचेल विद्या-विनयसम्पन्न ब्राह्मण है, कृष्ण का [illegible] मित्र है तथा उनके चरित्र से यह अभिव्यक्त किया है कि भगवान् भक्तपराधीन है। [illegible]

१— इनके अन्य कुछ और पद्यो को हम तुलना मे आगे प्रस्तुत कर रहे है।

२— द्रष्टव्य- (क) सुदामा-चरित, नरोत्तमदास, स० बद्रीदास सारस्वत, साहित्य रत्न-भण्डार, आगरा।

(ख) सुदामा-चरित्र, हलधर, प्र० स०, खड्गविलास प्रेस, पटना।

(ग) सुदामा-चरित, आलम, प्र० स० नागरी प्रचारिणी सभा, काशी।

(घ) सुदामा-चरित्र, वीरवाजपेयी, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

'सुदामा-चरित' के रूप मे खण्डकाव्यो की रचना की हे। इनके रचयिताओ मे प्रथम दो कवियो ने 'सुदामा-चरित्र' और तृतीय ने 'सुदामा को भाषा श्लोक' ऐसे नाम दिये है। रचना गाधीयुग से प्रभावित होने के कारण तात्कालिक स्थिति के प्रभाव से पूर्ण हे। जिस प्रकार 'कामायनी' की श्रद्धा ऊन और 'साकेत' की सीता सूत कातने की बात करती है, उसी प्रकार सिग्देलजी के सुदामा-चरित्र मे पौराणिक सुदामा की पत्नी भी सूत कातने का उपक्रम प्रस्तुत करती हे। वर्तमान का प्रतिबिम्ब इन नेपाली काव्यो मे बहुत अच्छा उतरा हे। उदाहरणार्थ 'सुदामा महल के चौकीदारो से डरता है कि कही वे पीट न दे। शासक वर्ग द्वारा जो धन का दुरुपयोग किया जाता हे और धनी के पास जो दुष्प्रवृत्तिया बढती रहती है उसका चित्रण सिग्देलजी की इन पक्तियो मे द्रष्टव्य हे —

यो पूरा धनवान् छ यो धन लिने बारो बनाऊ भनी,
वेस्या चोरहरू प्रयत्न छलका गर्धन् करोडो पनी।
जेले सत्पथ बाट यो मन हटी भारी बिलाखी हुने,
सारा जीवन को छ सार जुन सो बर्बाद पारी दिने ॥[1]

सुदामा की आत्मग्लानि, पत्नी के प्रति खीझ, धन के प्रति अनास्था के उदाहरण भी अच्छे है। यथा —

जो बित्त ले आप्त हरू टुटाई, बर्बाद गर्द छ सदा झगडा लगाई।
लोकापवाद अति पार्द छ सुन्न नित्य, देखिन्न सो स्थिरपनी छ सदा अनित्य ॥[2]

श्रीलामिछा ने ब्राह्मणी के मुख से अपनी दीनता का जो वर्णन करवाया है, वह बडा ही रोचक है। यथा —

सदा तुन्दा तुन्दा पतरि भई सारी त तनकी,
बती तुन्नू मैले तवल पुगि गै एक मन की।
चोलीया की हाली कति कहनु यो बात् सरम की,
विना खानू पीनू सब गरनु यो काम घर की ॥

इतना ही नही वह जहा भी सहायतार्थ जाती है लोग उसे तुच्छ दृष्टि से देखते हैं और वह उनके भाव समझकर लज्जावश कुछ कह भी नही पाती। इस असमजस का चित्रण बडी सजीवता से इस प्रकार हुआ हे —

जहा जान्छू ताहा दिदि बहिनिका काम करले,
आई माग्ली भन्या मन गरि त हेर्छन् नयन ले।

१– सुदामाचरित्र, कृष्णनाथ सिग्देल पृ० २३।

२- वही, 'भापारत्न' से उद्धृत।

'प्रकृति की रमणीयता से नाटक की चारुता मे अभिवृद्धि होती है' इस आशय से उपवन के वृक्ष, लताएँ, पशु, पक्षी आदि नाटक के सजीव अग माने जाते है । इस दृष्टि से संस्कृतनाटकों मे अन्त प्रकृति के साथ ही बाह्यप्रकृति का सुन्दर एव विशद वर्णन हुआ है । यद्यपि यहाँ ऐसे वर्णन मे पूरी सूचियो का जो समुल्लेख हुआ है, वह नाट्य-मञ्च की दृष्टि से तथा प्रेक्षकानुभूति की दृष्टि से अनुपयोगी ही कहा जाएगा, किन्तु उसे हम द्वारिका के तत्कालीन महाराजा विराज के प्रमद-वन की कल्पना के आधार पर समाहित कर सकते है ।

'भवभूति ने अच्छे नाटको का लक्षण देते हुए कहा है कि —

> भूम्ना रसाना गहना प्रयोगा सौहार्दहृद्यानि विचेष्टितानि ।
>
> औद्धत्यमायोजितकामसूत्र चित्रा कथा वाचि विदग्धता च ॥
>
> (मालतीमाधव १/६)

अर्थात् 'विभिन्न रसो का प्रचुर एव गहन प्रयोग, प्रीतिपूर्ण, रुचिर एव कमनीय कार्य-कलापो का अभिनय, पराक्रम और प्रणय का चित्रण, विचित्र कथावस्तु तथा निपुण सवाद, (ऐसे लक्षणो से युक्त नाटक ही उत्कृष्ट माने जाते है ।)

दशरूपककार धनञ्जय ने इसीलिये स्पष्ट किया है कि —

> आनन्दनिष्यन्दिषु रूपकेषु, व्युत्पत्तिमात्र फलमल्पबुद्धि ।
>
> योऽपीतिहासादिवदाह साधुस्तस्मै नम स्वादुपराङ्मुखाय ॥
>
> (दशरूपक १/६)

अत आनन्दातिरेक की विशुद्ध अभिव्यक्ति ही नाटक- निर्मिति का फल है और वह श्रीदीक्षित के प्रस्तुत नाटक द्वारा सुलभ है, और यही कारण है कि प्रस्तुत नाटक की रचना शैली भी उत्तम बन पड़ी है ।

आदेशादथ देशिकस्य दवतो दर्वीकरेणावृता—
न्येधान्यानयतो कुतोऽपि समभूद् यत् कोऽपि कम्पक्रम ॥३।१५॥

प्रमदोद्यान मे प्रवेश करते ही श्रीकृष्ण शीतल पवन का वर्णन करते हुए उसे कामी की उपमा देते हे (३।१६), सुमित्र द्वारा वनश्री के वैभव का आख्यान करने पर वे भी अपनी बहुज्ञता को व्यक्त करने मे नही चूकते। मध्याह्न मे वृक्षो के पास छाया का होना भी उनकी दृष्टि मे प्रिया को उत्सङ्गित करना है —

छायापतौ समन्तात् करसञ्चार कुर्वति दिशासु।
उत्सङ्गयन्ति तरवो मुग्धवधूटीमिव च्छायाम् ॥३।१६॥

सूर्यास्त के वर्णन मे भी श्रीकृष्ण का रसिक स्वभाव प्राची को तिमिराभिसारिका के रूप मे देखता हे (३।२८)। चन्द्रोदय के पूर्व अन्धकार को 'कुलटामोहनकलामहाध्वान्तस्कन्ध' (३।२६) कहकर जगत् को व्याकुल करनेवाला वतलाना तथा चन्द्रोदय के विभिन्न कल्पनामूलक वर्णनो के साथ ही भामा, रुक्मिणी, जाम्बवती आदि के प्रति अनुराग का निदर्शन उनकी सरसता का उज्ज्वल प्रतीक ही तो है। यथा—

क्षणमाविष्कृतमाना क्षणमभिदृष्टप्रसादमापुर्या।
घनलयनिर्मोकवती शशाङ्कलेखेव मा हरति ॥४।२॥

अथवा

दन्तान्तरालिकास्ते श्यामलरेखा हरति मे चित्तम्।
अधरसुधासम्बन्धादुदित इव शैवलारोहा ॥४।५॥ इत्यादि।

विदूषक सुमित्र, गालव और कनकचण्ड का भी अपना-अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व यहा निखारा गया है। उनकी प्रत्येक उक्ति मे काव्योचित कला का उन्मेष है, भणिति-भङ्गी का विभावन है तथा कथा-शैली का कमनीय विलास हे।

स्त्रीपात्रो मे नटी के गान के अतिरिक्त कही पद्य-प्रयोग नहा हे। प्राय सभी सक्षिप्तवचनाए है। हा, गद्य प्रयोग मे वे अपने वैदग्ध्य को व्यक्त करने मे अवश्य सफल हुई प्रतीत होती है और उनका महिलोचित मार्दव भी अक्षुण्ण वना रहता हे। इसी दृष्टि से दरिद्र की पत्नी और अन्य सखिया भी प्रवुद्ध ह।

काव्यशास्त्रीय विशेषताएँ

'श्रीदामचरित' नाटक का कवि काव्यशास्त्र की सभी विधाओ से सुपरिचित तथा उनका सुप्रयोग करने मे पूर्ण सक्षम हे। शृङ्गाररस तथा प्रसङ्गानुसार अन्य रसो की योजना मे भी प्रावीण्य दिखाने का पूरा प्रयास किया है। हास्यरस का परि-

पात्र भी विदूषक की विचित्र उक्तियों में प्राय झलकता है।

अलङ्कारों का मनोरम सन्निवेश कवि श्रीदीक्षित ने बहुधा किया है। शब्दालङ्कारों में अनुप्रास पर विशेष मनोयोग प्रदर्शित हुआ है। यथा—

कुञ्चत् कल्पतरूणि मूकितगुरूण्यापन्न-वित्ताधिपा—
न्याक्रन्दद् रिपुवल्लभानि विदलद्ब्रह्माण्डभाण्डानि च।
कम्पद् दिग्दयितानि रज्ज्यदवलान्याह्लादिबन्धुव्रजा—
न्याकुञ्चत् कमठानि यस्य चरितान्यामोदयन्ते जगत् ।।१।१७।।

यहां छेकानुप्रास तथा शतृप्रत्ययान्त शब्दों के प्रयोग से एक आकर्षक ध्वनि-नाट्य की सृष्टि की गई है। इस प्रकार के नादसौन्दर्यवर्धक प्रयोगों में श्रीदीक्षित ने बहुत ही सफलता प्राप्त की है। यही अनुप्रास वृत्त्यनुप्रास के रूप में भी जहां उतरा है वहां बहुत ही अच्छे स्वरूप को लेकर बिखरा है। दण्डकरूप स्तुति की पङ्क्तियों में तथा प्रासङ्गिक अन्य गद्य एवं पद्यों में इसका प्रयोग द्रष्टव्य है—

(क) जयाकृष्टकण्ठीरवाकुण्ठवैकुण्ठलुण्ठाकदंतेय- कण्ठाटवीलोचनोत्कण्ठपाठीनवेष-स्फुरत्कामठी०

(ख) देवदामोदरोदारदाराग्निसादर सादर साधयन् साधु० ।।२।२ ।।

(ग) उच्छलद्बहलवीचिनिचयचुम्बितचपलवेलादलदेलादलदलननागर सागर।
(इत्यादि गद्य, ३ अङ्क)

यमक का प्रयोग बहुत कम हुआ है। श्लेष अलकार भी एक-दो स्थानो पर ही प्रयुक्त हुआ है। यथा —

> उपनिषद्गहने हरिरूपि यत्, प्रणवनाकतले हरिरूपि यत्।
> दहरविष्णुपदे हरिरूपि यत्, किमपि धाम पुरो हरिरूपि यत् ॥३।८॥

यहा हरि शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थो का समावेश मननीय है।

अर्थालङ्कारो मे उपमा-पूर्णोपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, उल्लेख, निषेध, अर्थापत्ति, अर्थान्तरन्यास- विरोधाभास, परिसख्या, अतिशयोक्ति, अपह्नुति आदि विभिन्न अलङ्कारो का प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण प्रेक्षणीय है —

उपमा — परागस्थगनात्लुब्धवर्णा आमोदशालिन।
हरन्ति हन्त सन्ताप सज्जना इव वायव ॥३।३॥

पूर्णोपमा — काश्चनोत्का इव कलितोद्वेगा, काश्चन कलहान्तरिता इव कलिकोपक्रमभाज पुनर्मदनबाणासनातिमुक्तशिलीमुखभिन्ना, काश्चन स्वाधीनपतिका इव प्रियालापसङ्गता स्वच्छन्दकृतवृक्षारोहा। (इत्यादि। ३ अ०, सुमित्रोक्ति)

रूपक — अस्तपातुकधर्मांशुकिरणारुणिताञ्चलम्।
वस्तेऽन्तराले तिमिरश्यामल जगदम्बरम् ॥३।२२॥

उत्प्रेक्षा — विश्रामस्थानमिव मिहिकाया, कुलगृहमिव वर्षाया उत्पत्तिस्थानमिव चन्द्रालोकस्य, निर्वृतिपदमिव शीतजातस्य, आगारमिव शृङ्गारस्य० (इत्यादि ३ अक०, सुमित्रोक्ति)

उल्लेख — आस्थानी सद्गुणना निखिलनयवनी निर्गमो बोधसिन्धो—
रालान श्रीकरेणो कुलवसतिगृह भारतीविभ्रमणाम्। इत्यादि ॥१०॥

विरोधाभास – बिडौजसाप्यगोत्राभिदा, सुरूपेणापि धनदेन, महेश्वरेणाप्यनुग्रेण, जगत्प्राणेनाप्यप्रभञ्जनेन० इत्यादि (५ अ० कनकचण्ड की उक्ति)

परिसख्या — यत्र च शूलसम्बन्धो योगेषु, गदाभियोग पीताम्बरे, कपालित्व शङ्करे, बलहानिरसुरेषु, क्षयप्रचारो भवनेषु, हस्तेन कन्यावयवाभिमर्शन ज्योतिःशास्त्रे० इत्यादि (वही।)

बहुत से स्थलो पर ये ही अलङ्कार श्लेषपुष्ट होकर अथवा अन्यान्य अलङ्कारो से समन्वित होकर अङ्गाङ्गिभावसङ्कर भी बन गये है।

अभिनव कल्पना और आधुनिक दृष्टि

श्री दीक्षितजी ने चमत्कृत उक्तियों और विभिन्न अभिनव कल्पनाओं के साथ ही कुछ आधुनिक दृष्टि को भी अपनाया है, जिससे नाटक के आयाम को नये अवदान भी उपलब्ध हुए हैं। श्रीकृष्ण जब व्योमयान द्वारा श्रीदामपुरी की ओर जाते हैं, तो मार्ग में कैलाश-पर्वत भी आता है, वहीं शिव का निवास है। उनका शरीर जिसे विदूषक हिमगिरि-स्थित राक्षसों के खाने के लिये भात का ढेर बताता है— वह अर्धनारीश्वररूप है, अतः गजानन और कार्तिकेय जब माता का स्तन्यपान करना चाहते हैं तो एक स्तन के कारण उनमें परस्पर युद्ध होने लगता है, यह उक्ति विनोद के साथ अद्भुत भी है। यथा—

प्रेम्णार्धसङ्घटितयोः शिवयोः पुरस्तात् स्तन्यार्थिनौ द्विरदनाननकेकिकेतु ।
एकस्तनः श्रयतयाऽहमहं पुरस्तादित्यद्भुताञ्चितशिवं मृधमारभेते ॥५।४॥

एक विभक्ति-चित्र और एक शास्त्रकाव्य का उदाहरण भी द्रष्टव्य है—

यस्त्राता जगतां यमाह निगमस्तत्त्वञ्च येनाप्यते,
यस्मै योगिजनो नमः प्रकुरुते यस्मात् परो नापरः ।
यस्यैतत्सकलत्रजीवभुजगो यस्मिन् जगद् दृश्यते,
सान्द्रानन्दमयः पुराणपुरुषः स्याच्चक्षुषोर्गोचरः ॥२।१०॥

गर्जति घनो न वर्षति वर्षति नो गर्जति प्रथितम् ।
जल्पति न चोपकुरुते जन उपकुरुते न जल्पति कदापि ॥५।१४॥

इस कथन से 'गरजै सो वरसै नही' इत्यादि उक्ति को व्यक्त किया है । ऐसी ही कुछ अन्य उक्तियो का समावेश अर्थान्तर-न्यास के माध्यम से भी हुआ है । जहा काल के वारे मे कुछ कहा गया हे, वहा काल को कालहलिक (३।३१) कहकर रविरथहल से अवकृष्ट तथा तिमिरौघ द्वारा समीकृत वताकर नभ क्षेत्र मे नक्षत्र-वीजो का वापक (वोनेवाला) वतलाया है । वही 'तिमिरमयनीलवर्ण' मे चित्र बनाता हुआ 'काल—चित्रकार' हे । कही कालसमुद्धारक' (५।३४) है तो अन्यत्र 'काल-मन्त्री' के रूप मे व्यक्त है । सूर्योदय, सूर्यास्त, चन्द्रोदय, चन्द्रास्त, समुद्र, द्वारका-पुरी, गोपुर, प्रमदवन, हिमालय, कैलास और श्रीदामपुरी के वर्णनो मे कविवर श्री दीक्षितजी ने गद्य और पद्य दोनो ही रूपो मे अपने काव्य-कोशल को अद्भुत प्रतिभा के द्वारा मनोरम पद्धति स पुरस्कृत किया है ।

हिन्दी चरित्रो के साथ तुलना

उद्यान-वर्णन मे हिन्दी के कवि हलधरदास ने अपने 'सुदामाचरित्र' मे पुष्पो की एक सूची-सी प्रस्तुत की हे । यथा—

केसरि कुसुम गुलाव केतुकी मालती वेली,
सेवति सुभग नेवार कुन्द नागेस चमेली ।
चम्पा करत बवग बेलि लहरी अपराजित,
जूही मधुर सुगन्धराज मुनिपुष्प सुवासित ।
चन्द्रकला श्रीमल्लिका श्रीवसन्त सूरजमुखी,
सर्ब फूल फूले सुभग भ्रमर जुथ होते सुखी । (पृ० २३६)

सम्भवत यह देखकर दीक्षितजी कैसे पीछे रहते ? उन्होने भी वृक्षो की एक प्रौढ सूची उद्यानाधिकारी सुमित्र द्वारा अपने उद्यानस्वामी श्रीकृष्ण के सम्मुख प्रस्तुत करवा दी, जिसमे—

'धनसार, पीतसार, त्वक्सार, सिन्दुवार, कोविदार, मन्दार, सहकार, कर्णिकार, शितिसार, जम्बीर, वानीर, करवीर, पाटीर, वीरपुर, खजुर, मालूर, खदिर, कदर और वदर' जेसे १६ वृक्ष रान्त, 'ताल, तमाल, हिन्ताल, कृतमाल, नक्तमाल, कन्दराल, चलदल, दधिफल, जन्तुफल, निचुल, पिचुल, चतुरङ्गुल, मञ्जुल, वञ्जुल, मगुण्ठील, मधुल, गुडफल, विडुल, फेनिल, उद्दाल, कदली, लाङ्गली, लवली और शाल्मली' आदि लान्त पदोवाले २४ विविध वृक्षो के नाम तथा साथ ही अन्य १६ वृक्षो के नामो की सूची दर्शनीय है[1] । और इतने से ही सन्तुष्ट न होकर वही स्वय श्रीकृष्ण,

१ द्रष्टव्य, गद्याश, श्रीदामचरितम्, पृ २६ ।

सार्थी विदूषक, अतिथि सुदामा तथा गालव के द्वारा भी इसी क्रम मे अन्य अनेक वर्नोपधि और पुष्प,-फलवती लताओ के वर्णन भी कर दिये है । इन्ही वर्णनो मे उत्प्रेक्षा, पूर्णोपमा, रूपक, परिसख्या और विरोधाभास का भी पर्याप्त सहयोग लिया है ।

नरोत्तमदास ने सुदामा की पत्नी द्वारा—

महादानि जिनके हितु जदुकुल कैरवचन्द ।
ते दारिदसताप ते रहे न किमि निरद्वन्द्व ।।

कहला कर द्वारका भेजना चाहती है, तो सुदामा—

कह्यो सुदामा वाम ! सुनु वृथा श्रौर सब भोग ।
सत्य भजन भगवान् को धर्म सहित जप जोग ।।

कहकर ब्राह्मण के धन के रूप मे भिक्षा का महत्त्व दिखलाता है । जब कि यहा दीक्षितजी ने 'सकलदौर्गत्यगदागदङ्कार' श्रीकृष्ण के पास दारिद्र्यदुःख-निवारण के लिये प्रेरित करनेवाली अपनी पत्नी वसुमती को 'भिक्षा, मानवाले मानव के लिये छन्दोरीति के समान जिह्वालाघव मे गुरु को भी लघु बनाने वाली' कही गई है, तथा—

और—

"द्वारका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहु जाम यहै जक तैरे" ।

ऐसा कहला कर उनकी पत्नी के प्रति खीझ का प्रदर्शन किया है जब कि दीक्षितजी ने पहले सुदामा को आत्म-सन्तोषी और शिष्य गालव के द्वारा वहुत उकसाने पर कृष्ण को 'कृपण' कहकर ही सन्तोष मान लिया है। एतदर्थं निम्न दो पद्य दर्शनीन है —

पीतया मदिरया प्रमाद्यति, स्पष्टयैव धनसम्पदा जन. ।
तच्छमस्य परिपन्थिनीमिमा, सङ्गृहीतुमपि क समुत्सहेत् ।।४।४०।।

वहुलाव्ययसमुदायादासादयत कमप्यर्थम् ।
तुहिनपदतुल्यरूपात् कृपणादपि वेपते काय ।।४।५१

तथा अन्तिम कामना भी श्रीदाम की यही है कि—

पर्यस्त दौर्गत्य पर्यस्तो मे शरीरसादश्च ।
कृपया कसद्विषतो भवोऽपि पर्यस्ततामेतु ।।५।६१।।

'श्रीदामचरित' मे छन्दोविधान

काव्य के रसास्वाद मे छन्दो का उचित प्रयोग भी अत्यन्त आवश्यक माना जाता है । भाव कैसे भी हो, गीतिमत्ता के आवरण मे प्रस्तुत होने पर वे अधिक हृदयग्राही वन जाते है । आनन्दकारी, अभिप्राय-वाहक एव रसप्रवाही छन्दो का प्रयोग काव्य के प्रत्येक अग मे समादृत है । कविवर श्रीसामराज दीक्षित भी इस प्रकार के छन्दोविधान मे सिद्वहस्त है । प्रस्तुत नाटक मे १५० से अधिक पद्य है और उनमे प्राय २५ प्रकार के छन्दो का प्रयोग हुआ है । जिनके नाम इस प्रकार है—

१- अनुष्टुप्	२६	८- द्रुतविलम्बित	३
२- आर्या	४५	९- पक्ति	१
३- इन्द्रवज्रा	१	१०- पुष्पिताग्रा	७
४- उपजाति	६	११- पृथ्वी	१
५- गाहा	३	१२- प्रहर्षिणी	१
६- गीति	३	१३- भुजङ्गप्रयास	१
७- दण्डक	३	१४- मन्दाक्रान्ता	१

१५- मात्रिक (?)	१	२०- शार्दूलविक्रीडित	१६
१६- मालिनी	३	२१- शालिनी	१
१७- रथोद्धता	२	२२- शिखरिणी	४
१८- वसन्ततिलका	६	२३- स्रग्धरा	५
१९- वियोगिनी	३	२४- हरिणी	१

तथा २५–गद्यरूप दण्डक प्रभेद १

इनके पर्यालोचन से स्पष्ट हो जाता है कि सस्कृतकाव्यो मे प्रयुक्त होने-वाले प्राय सभी प्रकार के छन्द इनमे प्रयुक्त है और वे सभी अभिप्रायानुरूप विधान मे सफल प्रनीत होते है ।

इस प्रकार यह नाटक सभी दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण है । ऐसे उत्तम नाटक का प्रकाशन करने मे राष्ट्रिय सस्कृत सस्थान के निदेशक महोदय डॉ० रामकरण शर्माजी की सत्प्रेरणा तथा विद्यापीठ के प्राचार्य डॉ० मण्डन मिश्रजी का प्रोत्साहन सदा हमारे साथ रहा है अत उन के प्रति कृतज्ञताज्ञापन करते हुए कामना करता हू कि—

मातर्भारति ! वाङ्निधौ कति कति प्रत्नानि रत्नानि नो,
ग्रन्थानामिह सन्ति यानि बहुशो लुप्तानि लिप्तानि वै ।
लुप्ताना पुनरुद्धृतौ हृदि सदा निष्ठाऽस्तु तेषा तथा,
लिप्ताना च परिष्कृतौ भवतु मे प्रज्ञा ततस्तत्परा ॥
इत्यल पल्लवितेन ।

हरिनिरोगयदिनम्
२०।३।८१ ई०

विद्वद्वशवद
डा० रुद्रदेव त्रिपाठी

 

पण्डित-कवि-
श्रीसामराजदीक्षित-प्रणीत

श्रीदामचरितम्

(नाटकम्)

श्रीदामचरित'-नाटकस्य पात्र-परिचय

पुरुष-पात्राणि

१- सूत्रधार	—	नाटकीय-प्रयोगस्य निर्देशक ।
२- दारिद्र्यम्	—	ब्रह्मणाऽदिष्ट मध्यमलोकावेक्षणार्थमुपेत पात्रम्।
३- श्रीदामा	—	श्रीकृष्णचन्द्रस्य सखा ।
४- गालव	—	श्रीदाम्नोऽन्तेवासी ।
५- गन्धर्व रूपप्रिय	—	गगनयानेन भ्रमन् कश्चन गन्धर्वविशेष ।
६- प्रियरूप	—	रूपप्रियस्य सखाऽपरो गन्धर्व ।
७- कृष्ण	—	भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ।
८- विदूषक	—	श्रीकृष्णस्य नर्मसचिव ।
९- प्रतिहारी पुरुष	—	श्रीकृष्णस्य द्वारपाल ।
१०- प्रतिहारी	—	श्रीदाम्नो द्वारपाल ।
११- पुरुष सुमित्र	—	श्रीकृष्णस्य प्रमदोद्यानाधिकृत पुरुष ।
१२- पुरोहित	—	अतिथि-सपर्यादिकारक आचार्य ।
१३- काञ्चुकी	—	आर्याया वसुमत्या सेवक ।
१४- कनकचण्ड	—	श्रीदामपुर-परिचायक कश्चन पुरुष ।

स्त्री-पात्राणि

१- नटी	—	सूत्रधार-सहयोगिनी ।
२- दुर्मति	—	दारिद्र्यस्य पत्नी ।
३- वसुमती	—	श्रीदाम्न पत्नी

श्रीसामराजदीक्षितप्रणीतम्

श्रीदा चरित

(नाटकम्)

अथ प्रथमोऽङ्क

(नान्दी)

जलधरसदृशे मुकुन्दवक्षस्यचिररुचिप्रतिभा[1]समुद्वहन्त्या ।
हृदि कमलभुव श्रिय वितन्वन् गरुडमणेर्हरताद[2]शर्म कृष्ण ॥१॥

(नान्द्यन्ते सूत्रधार)

सूत्रधार. — (विभाव्य)

चित्ते नित्य चकास्ता नृपवर–रचनारम्भविध्वसहेतु–-
र्वेदान्तज्ञेयतत्त्वो बहुतरगहनामेयवृत्तप्रपञ्च ।
यस्यामोघान् गुणौघान् कविवररचना वर्णितु नैव शक्ता,
य द्रष्टु योगिपङ्क्ति[3]रलमति रसघनानन्दसन्दोहकन्दा ॥२॥

(परितो विलोक्य) अलमतिविस्तरेण । भो भो विकचनवनीलनलिनदल कोमलकायकान्ति-सक्रान्नि-किर्मीरित-द्व्यष्टसहस्रगोपी-पीवर-कुचस्थलपुनरुक्तित मृगमदपत्रस्य भङ्गुररुधिरमन(नो ?) मदचमूसमररसिकदितिजनिजनित निधन - समेधित - धर्मकर्म - विधुतकलुपजगदवनमुदितमुनिजन - कृतपारायणस्य नारायणस्य यदुवशावतसस्य चरणनलिनमिलदमलजनानुसरदतिविपुल धनलिप्सया मयि केनचित् सौभाग्यजुपा निक्षेप इवायमर्थ सस्थागितोऽस्मि यदभ्याश सभ्यानामागतेन त्वया केनापि रूपकेण प्रमोदामोदितमनसो वय विधेय इति । तत् प्राप्तावसरमनुतिष्ठ प्रियया सह कुशीलवै सङ्गीतकम् (परिक्रम्यावलोक्य च) अये ! अनाहूतैव विदितवृत्तान्तेव प्रिय गृहीततत्तद्भूमिकासम्भारा समुपस्थिता ।

---

१ प्रतिमा समु-ब० । २ हरताम् शर्म-ब० ३ क्रमति-ब० ।

(तत प्रविशति नटी)

नटी —अज्जउत्त, णट्टप्पग्रद विग्र तुम्ह मणा दीसई ।
[ग्रार्यपुत्र, नृत्यप्रवृत्तमिव युष्माक मनो दृश्यते ।]

सूत्रधार —प्रिये, पररञ्जना एव गुणा भवन्ति । यत —

ग्रहृत्वा तरुणानीकमनासि स्फुरता वृथा ।
कुरङ्गाक्षीकटाक्षाणा दुर्लभा परमागता ॥३॥

ग्रपि च—

विवेचिता गुणाभिज्ञैर्भूषयन्ति नर गुणा ।
परीक्षिता हि मणय शोभा कामपि तन्वते ॥ ४ ॥

तदमीषा विदुषामुपहारीकृत्य शोधयेय तावन्निजगुणान् ।

नटी —ता किं पि ग्रच्छि तारिस रुवग्र ? [तत् किमप्यस्ति तादृश रूपकम् ?]

सूत्रधार —(स्मृत्येव महर्षम्) प्रिये, साधूपलब्धमेतेषा रञ्जक प्रेक्षणकम् । स्मरसि नरहरि-
दीक्षितसूनुना दीक्षितसामराजेन ग्रानन्दरायरञ्जनाय 'श्रीदामचरितम' नाम
नाटक स्वय विरच्य तदग्रेऽभिनेतु मह्यमर्पितमासीत् ।

नटी – (क्षण स्मृत्वा) सो से णामराग्रो जेण धुत्तणट्टग्र प्पहसण कदुग्र वग्र णट्टाविदा ।
[सोऽसौ नामराजो येन 'धूर्तनर्तक' प्रहसन कृत्वा वय नर्तापिता ।]

सूत्रधार —ग्रथ किम् ।

सूत्रधार —प्रिये, स एव कामाभिराम

आकैलासप्रथमशिखरादासुवेलाचलान्ता–
दापौलोमी–विहरणगिरेराप्रतीची दहार्यात् ।
विश्वे विष्वङ् मधुरशिशिरान् चञ्चलाकूणिताक्ष,
पाय पाय श्रवणपुटकैर्यद्‌गुणानुद्‌गृणन्ति ॥ ६ ॥

अपि च —

कुञ्चत्कल्पतरूणि मूकितगुरूण्यापन्नवित्ताधिपा––
न्याक्रन्दद्रिपुवल्लभानि विदलद्‌ब्रह्माण्डभाण्डानि च ।
कम्पद्दिग्दयितानि रज्ज्यदबलान्याह्लादिबन्धुव्रजा–
न्याकुञ्चत्कमठानि यस्य चरितान्यामोदयन्ते जगत् ॥ ७ ॥

अपि च—

आस्थानी सद्‌गुणानानिखिलनयवनीनिर्गमो बोधसिन्धो–
रालान श्रीकरेणो कुलवसतिगृह भारतीविभ्रमाणाम् ।
वापी वाणीसुधाया सकलसुजनतामूलमद्रिः कृपाया,
केलीसिन्धु क्षमाया धवलयतितरा म स्वकीर्त्या जगन्ति ॥ ८ ॥

अपि च ––

उत्फुल्लपद्मानि विहाय पद्मा–
सद्माकरोद्यन्नयनाम्बुजन्म ।
कुतोऽन्यथैतद्दलनेऽर्थिसार्थो,
दारिद्रयनामापि सरीसरीति ॥ ९ ॥

(सहर्षमात्मगतम्)

नवरसरसिक कविर्विनीत,
भरतकुल वयमात्तशास्त्रतत्त्वा ।
चरितमपि हरे प्रभु कलावा–
नखिलमिद सुकृतैर्ममाविरासीत् ॥ १० ।

तथा हि—

अफलितास्वपि भूरुहराजिषु,
प्रसवसौरभसक्तमधुव्रतान् ।
विरतमञ्जुलगुञ्जितविभ्रमान्,
फलधिया रसिका परिचिन्वते ॥ ११ ॥

नटी —अह वि सुरहिं वट्टावइस्स । [अहमपि सुरभि वर्धापयिष्ये]
(इति गायति)

चदणगधसुहेहि दाहिणपवणेहि रुक्खजादीओ ।
सुरहिज्जदि वसते सता कारेंति अप्पणो सरिस ॥ १२ ॥
[चन्दनगन्धसुखैर्दक्षिणपवनै वृक्षजातीयै ।
सुरभीयन्ति वसन्ते सन्त कुर्वन्त्यात्मन सदृशम् ॥]

(सविषादहासम्) को उण अह्मदेण्ण परिहरिअ अप्पसारिच्छ करिस्सदि ।
[क पुनरस्मद्दैन्य परिहृत्यात्मसदृश करिष्यति ।]

सूत्रधार —प्रिये, अल विषादेन ।

य अन्तरात्मा भूताना देवदेवो जगत्पति ।
श्रीदाम इव नास्माक दारिद्र्य स हरिष्यति ॥ १३॥

तदान्तरगणीयाय साधयाव ।

(इति निष्क्रान्तौ)

प्रस्तावना

(तत प्रविशति दारिद्र्य दुर्मनिप्र)

किञ्चोदञ्चितशीतकुञ्चिततम प्रत्यङ्गभस्मस्फुरत्-
कम्प सयतजाठरानलवल देवालये रात्रय ॥ १४॥

(सोच्छ्वासम्) तदाश्रयाय स्थानमन्वेपयामि । (इति परिक्रामति)

दुर्मति —अज्जउत्त, तुम्हे लच्छीए पडिउला । कइ उण महुमहणस्स पिआ हुविस्सनि ।
[आर्यपुत्र, त्वामपि लक्ष्मी प्रतिकूला। कथ पुन मधुमथनस्य प्रिया भविष्यन्ति ।]

दारिद्र्यम् —प्रिये, महत् खलु रहस्यमिदम् । स्त्रीस्वभावमुलभलौल्यान् कदाचित् त्वत्तो नश्येदिति नाभिधातुमुत्सहे ।

दुर्मति —(सश्लाघ्यम्) तुम्ह पडिपथी कदा विजादो अअ जणो। [युष्माक प्रतिपन्थी कदापि जातोऽय जन ।]

दारिद्र्यम् —(सस्मितम्) दिष्टविनिष्टपक्षपातेपु धीरेपु ।

दुर्मति —(सस्मितम्) तहिं घरिणी सुमदि उज्झिअ सोहग्गम्हि । तुम्हेहिं तये रममाणेहिं अह विसुमरिदा । [तदा गृहिणी सुमति त्यक्त्वा सौभाग्य गतास्मि । त्वया तया रममाणेनाहमपि विस्मृता ।]

दारिद्र्यम् —(साशङ्कम्) न खल्वेवम् । किन्त्वकाण्डलब्धायास्त्वत्परिपन्थिन्या निग्रहे यदितरस्माभिर्न त्वमाहूता । तदलमनागसीह कोपवन्धेन ।

दुर्मति —रहस्साइ ढक्केतेसु तुम्हेसु कह ण कुप्पिस्स । [रहस्यानि छादयत्सु भवत्सु कथ न कुप्ये ।]

दारिद्र्यम् —प्रिये, किन्तवास्त्यकथनीयम् । शृणु । श्रियोऽप्यह प्रियो मधुसूदनस्य । यत स्वानुगृह्येपु तूर्णमपहृत्य रमा मामेव नियोजयति । ततो वैराग्यादय आगत्य मामुपजीव्य व्यतितिष्ठन्ते ।

दुर्मति —तेसु आअदेसु मह कह वावारो । [तेष्वागतेपु मम कथ व्यापार ।]

दारिद्र्यम् —यातेपु महितेपु तेपु कुलयोपिदाचारविदुष्यास्तव स्वत एव व्यावर्तते व्यापार ।

दुर्मति —कध अध रमाए चिठ्ठतीए तुम्हाण प्पवेसो पकिदिसु। [कथमथ रमायास्तिष्ठन्त्या युष्माक प्रवेश प्रकृतिपु ।]

दारिद्र्यम् —प्रिये, त्वमेव तत्र द्वारम् ।

दुर्मति —कह विअ । [कथमिव] ।

दारिद्र्यम् —त्वमादौ हृदयानि श्रीजुषा प्रविश्य कर्मस्वनास्था जनयन्ती पापादौ प्रवर्तयन्ती तानि, अद्य यथेष्टचेष्टाप्रवृत्तेषु तेषु स्वत एवोद्विग्ना रमा तान् जहाति । ततो मम सुलभ एव प्रवेश । इति ।

दुर्मति —(सगर्वम्) ण अह सिरीए उव्वावरी हुवीअ तुम्ह प्पवेसे कारण होमि । [नन्वह श्रिया उच्चाटिनी भूत्वा तव प्रवेशे कारण भवामि] ।

दारिद्र्यम —प्रिये, त्वया महधर्मचारिण्या गुणमयत्रिमूर्तिष्वपि सुलभमात्मन प्रवेश मन्ये। (गाढ परिष्वज्य)

इन्द्रधनाधिपकमला किमलाघवमाश्रयन्ति नो तावत् ।
यावन्न देवि भवती भवतीव्रा केलिमावहति ॥ १५ ॥

तथापि प्रियाप्रेमानुबद्धमनसा हरिणा मामपनीय क्वचित् स्वानुगृह्येष्वपि दिश्यते कमला । तत् कतिपयदिन यावदधुनैव गुरोरनुज्ञया कृतोपयमनस्य कण्ठावलम्बित-सरस्वतीदाम्न श्रीदाम्न आश्रयेणायुर्गमये ।

दुर्मति —तारिसस्स महाभाअस्स तवस्सिणो समदमवेरग्गप्पहुदीहि अहिट्ठिदस्स पुरदो अह कह चिट्ठिस्स । [तादृशस्य महाभागस्य तपस्विनश्शमदमवैराग्यप्रभृतिभिरधिष्ठितस्य पुरतोऽह कथ स्थास्यामि ।]

दारिद्र्यम् —प्रिये, नून प्रागेव दत्तोत्तरमेतत् । (स्वगतम्) भगवदनुज्ञया प्रवृत्तस्यापीदृशे कर्मणि न मे मानसमायास्यति प्रसादम् । यतो हि महान्त —

अभिनवकृतपरिणयन विद्वास धर्मकर्मरतम् ।
नाभिभवन्ति स्थविर राजानमनागस बालम ॥ १६ ॥

दुर्मति·—अज्जउत्त, कह उण सिरीसरस्सईण वैर ? [आर्यपुत्र, कथ श्रीसरस्वत्योर्वैरम् ?]

दारिद्र्यम्—प्रिये, कलहो नाम स्त्रीणा कुलधनम् । तत्रापि नीचमूर्खजनरक्ता श्रीरन्तर्वाणि-कुलान्यनुगृह्णन्ती वाणी चेत्यसमानशीलव्यसनितया न तयोरधिरोहति प्रेम-भूमानम् । भवतु यथा तथा वा । विप्रेषु तु श्रियो नाञ्चति कुञ्चितोऽप्यपाङ्गभङ्ग । यतो दृश्यत एव—

गृहीतो हृदये धर्म कण्ठे बद्धा सरस्वती ।
एतैरितीव विप्रेभ्य स्वैर श्रीरपसर्पति ॥ १८ ॥

(नेपथ्ये)

प्रबुद्धोऽस्मि । अयमह रात्र्यवशेष विज्ञायागत एव श्रीमच्चरणाभ्यर्णम् ।

दारिद्र्यम्—प्रिये, एष श्रीदामा सहान्तेवासिना रात्रिशेष विज्ञातुमित एवाभिवर्तते। तदेन तावत् प्रतिपालयाव । (इति परिक्रम्य स्थितौ) (तत प्रविशति श्रीदामा शिष्यश्च)

श्रीदामा—वत्स गालव, कियदवशेषा यामवती ?

गालव —(दिशोऽवलोक्य) कल्यकल्पैव । यत

गृहीतताराकुसुमस्य दूरमावृष्टचन्द्रस्तबक प्रतीच्या ।
श्रयत्यनूरुद्युतिपाटला दिङ् नभस्तरो पल्लवभावमैन्द्री ॥ १९ ॥

अपि च —

अनूरुकरसङ्कुरारुणितमन्यतोऽप्येकत ,
सिताशुकिरणावलीवलनयावलक्षीकृतम् ।
क्वचिन्निविडवारिदव्यतिकरेण नीलान्तर,
निजत्रिगुणरूपता स्फुटयतीव विष्वङ् नभ ॥ २० ॥

अपि च —

आत्तरणैरलमेभि स्वाभाविकभूषणवतीनाम् ।
इति रात्रिसख्युपहृत प्राची नक्षत्रभूषण त्यजति ॥ २१ ॥

श्रीदामा—(विलोक्य) वत्स, कल्यकल्पैवेति किमाह । नन्वेष भगवाश्चक्रचक्रचङ्क्रममाण-विरहकारी—

अग्रे काश्यपिना निवारिततमस्तोमेन भृङ्गावली—
दण्ड ताण्डवयद्भिरम्बुजकुलैरारब्धपत्तिक्रम ।

सन्ध्याशोणवितानभाजि गगनप्रान्ताजिरे सस्थितो,
मन्द मन्दमुदेति भूपतिलकस्पर्द्धाकरोऽहस्कर ॥ २२ ॥

गालव — (विलोक्य)

पूर्वमहीधरशिखरे निद्राणो घर्मकरमाली ।
पक्षिकलकलविबुद्ध पश्यति रोषादिवोद्ग्रीवम् ॥ २३ ॥

अपि च –

शोणीकृत स्वकिरणै रसेन पूर्वाचल पतग ।
श्रुत्वेन्दुनावलक्षितमुद्गतरोषारुणोऽम्बरे पतति ॥ २४ ॥

श्रीदामा — वत्स, तद्यावदुपहृतसमित्कुशकुसुममुपहितविविधविधिसमुपकरणमेतिह्यवानुपचरिनकतिपयधनिकमहमतिथिममयमनतिक्रममाण आगत एव ।

गालव —(सस्मितम्)—इतरानभिधानपूर्वकमतिथिग्रहणमेवाचार्यै कृतम् ।

श्रीदामा—वत्स, आश्रमेषु सार गार्हस्थ्य तत्राप्यतिथिसपर्येति आमनन्ति आगमविद ।

दारिद्र्यम् —(सहसोपसृत्य) भगवन् अयमह भवदातिथेयीमर्थयमान प्राप्तोऽस्मि । तन्न साम्प्रत साम्प्रतमतिथिममय समुल्लङ्घ्य गन्तुम् ।

गालव —(विलोक्य सभयम् । किञ्चिदपसृत्य सभयम्)

अहो [illegible] —

त्वक्श्लिष्टकीकसमिलद्धमनीनिकाय,
कायस्फुटन्मलमुत्थितपूतिगन्ध ।
छिद्र? व्यधत्तरपटच्चरगुप्तगुह्यो,
स्थ्योर्ध्वकेशनिवह प्रविकीर्णदन्त ॥ २५ ॥

(नेपथ्ये)

अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् ।

गालव—(कर्णं दत्वा) कथमाचार्याणामिवार्तस्वर ।

(पुनर्नेपथ्ये)

अहह ! कष्ट कष्टम्। अतिथिरूपधारिणा दारिद्र्येण बलादविभाव्य वञ्चित-स्तपस्वी श्रीदामा ।

गालव—(सोद्वेगरोपम्) कथ दारिद्र्यहतकेनास्मदाचार्योऽभिभूत । तद्यावदेनमर्थं माथार्थ्येनोपलप्स्ये । (इति परिक्रामति)

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

इति प्रथमोऽङ्क

अथ द्वितीयोऽङ्कः

(तत प्रविशत प्रवेशिन्यौ सख्यौ)

एका—हला कुमुदिणी चिरेण उण दिट्ठासि। तेण अण्ण व्व तुह रूव पेक्खामि। [सखि कुमुदिनि, चिरेण पुनर्दृष्टासि। तेन अन्यदिव तव रूप प्रेक्षे।]

अपरा—हला णलिणी, घरकम्मवावडाए, मह अवसरो व्विअ ण होइ । अज्ज अज्जाए गोरीवदण कुणतीए नुमणाइ उच्चेउ पेसिदम्मि । दिट्ठिआ तुम दिट्ठासि । [सखि नलिनी, गृहकर्मव्यापृताया ममावसरोऽपि न भवति। अद्यार्यया गौरीवन्दन कुर्वन्त्या सुमनास्युच्चेतु प्रेपितास्मि । दिष्ट्या त्व दृष्टासि ।]

नलिनी—हला, कित्ति तुह अज्जा तत्तहोदीए णमस्स कुणइ ।
[सखि, किमिति तवार्या तत्रभवत्या नमस्य करोति ।]

कुमुदिनी—दोगच्चपच्चादेसत्थ । [दौर्गत्यप्रत्यादेशार्थम्]

नलिनी—तेण त हीअदि । [तेन तद्धीयते]

कुमुदिनी—अह इम् । [अथ किम्]

नलिनी—ता अम्हसहीए सिरिदामघरिणीए कहिस्स । [तदस्मत्सख्यं श्रीदामगृहिण्यै कथयिष्ये।]

कुमुदिनी—किं ताए ? (किं तया ?)

नलिनी—सहि, उज्जमणप्पहुदि तिस्मा पइस्स दालिद्द उवठ्ठिदं। सपद सो वुड्ढो ण सक्केइ चलिदु वि । सा उण पाएहि पीडिज्जती मुणालिअव्व किलामती कह वि घरव्वावार उव्वरुहइ । त दट्ठूण मह मण उव्वावरीअदि। [सखि, उद्यमनप्रभृति तृष्णा प्राप्य दारिद्र्यमुपस्थितम्। सम्प्रति स वृद्धो न शक्यते चलितुमपि । सा पुन पादयो पीडयन्ती मृणालिकेव क्लाम्यन्ती कथमपि गृहव्यापारमुपरोहति । ता दृष्ट्वा मम मन उच्चावचीयति ।]

कुमुदिनी—ता मम वि एअ आवस्सअ । जाव अज्जाए जहठ्ठिद वढ्डाप्पउत्ति उवलहिअ तुह णिवेदइस्स । [तन्ममाप्येतदावश्यकम् । यावदार्याया यथादिष्ट वृद्ध-प्रवृत्ति तव निवेदयिष्यामि ।]

नलिनी—सहि, एव्व करीअदु । अह वि सरगद त चेअ अण्णेसामि [सखि, एव क्रियताम् । अहमपि मारगत तमेवान्वेषयामि ।] (इति निष्क्रान्ते)

प्रवेशक

(तत प्रविशति श्रीदामा गन्तावश्च)

स्वप्नेऽपि शर्म नानुभवपथमवतरति । अथवा इनममुना पदार्थानवृत्तिना
तमेवैतदनुकूलादृष्टप्रवृत्तिनिमित्तमखिलजगतीतलाजननज ठक्न्द प्रार्थनानती-
भिर्याचदङ्गीकृत्येद जन करोमि। (अग ग्गिवाय)

जयाकृष्टकण्ठीरवाकुण्ठवैकुण्ठलुण्ठाकदैतेयकण्ठाटवीलोठनोत्कण्ठपाठीनवेषस्फुरन्कामठीं
वृत्तिमाश्रित्य बिभ्रन्महीं त्वम् ।

तथा पोत्रिपोत्र पवित्र वितन्वन् सगोत्रश्च गोत्रा । विर्माप प्रकर्षेण देवापिहर्याय कर्षन्नमर्षेण
दैतेयपर्वत्पतिप्राणजातम् बलि हेलया व्यालमालाविलासालयस्थं वितन्वन् ।

अल कार्तवीर्यं स्ववीर्येण गर्वेण निर्वीर्यमुत्सार्य भूमि समर्यादमार्येषु कुर्वन्, अखर्वार्व-
सर्वस्वगर्वौघसर्वङ्कषक्रोधविक्रोशसङ्क्रान्तिसङ्क्रन्दसङ्क्रन्दनक्रामविक्रान्तलङ्केशपङ्केशया -
गालिभास्वत्प्रताप !

देवदामोदरोदारदारारिरसादर सादर साधयन् साधु कंसादिससारमंमारमानादयन् ।
बुद्धबुद्धोद्धतानेकबुद्धिप्रबोधस्फुटत्स्फारवेदापहार प्रलुप्तक्रियाजातसञ्जानकारुण्य हे ।

यवनार्णव कुम्भसमुद्भव मा परिपाहि दशाकृतिकीर्त्यतनो ?
कलयाशु निजाशुगसङ्करसहृतदैत्यजनाशुग देव हरे ॥

जृम्भन्नवाम्भोजशोभातिदम्भापहारस्फुरत्पादपाथोजरज्यन्नखद्योतखद्योतितानेक
निस्तन्द्रचन्द्रस्फुरन्मेदुरोदारपाथोजमार्यप्रभाव्यर्थकश्रीलमत्वाङ्ग,

नवाम्बुजमण्डलगर्वविमोचनलोचनशोचनजातविमोकदिवौकपलोककिरीटविटङ्ककुटङ्क -
कोटिमहाश्मजरश्मिविराजितपाद ?

अलिपतभूधरतल्पितपन्नगनायक जल्पितकोटि विधायक कल्पितससृतिहायक दायक
मोक्षफलस्य मलस्य विधर्षक ?

जय जय शर शरदुदितशिशिरकरनिकररुचिर रुचिरसुचिरचितमल मलमलयनिलय-
मुपनय मम सुररिपुसमररसपर ।

चिन्त्य सर्वैर्देवैर्वेदैर्गम्य सम्यङ नम्यो यम्य ।
स्वान्तैरन्त कान्तै ज्योति प्रान्तै दीप्ताशस्त्वम् ।

विरगो पाया पाया सदा सामराजस्य भक्ति प्रयच्छेति याञ्जा
मृषा मास्तु लक्ष्मीपते हे नमस्तुभ्यमस्तु ॥ २ ॥
अनुवन्धवशेन जन्मिना भवताधारि दशावतारिता ।
मधुसूदन मत्कृते कथ हृदय ते न भवत्युरुव्ययम् ॥ ३ ॥

अपि च—

विश्वेश वीक्ष्यसे यद्गुणहीनस्त्वं न मां गुणिनम् ।
तस्मादेव जनेऽस्मिन् नेक्षन्ते निर्गुणा प्रभव ॥ ४ ॥

(सविलक्षस्मितम्)

तथ्यमकरो प्रवाद त्वमहं चैको न मे स्पृश ग्रन्थिम् ।
वदतीति ममैवाश सुखी भवान् दु खिन तु मा त्यजेति ॥ ५ ॥

अपि च—

अज्ञातजन्ममृत्युव्यसनस्यानन्दविग्रहस्य तव ।
नृहरे कथं भविष्यति परदु खध्वसनेच्छाऽपि ॥६ ॥

भवतु । किमनेन परिदेवनेन । स्वत पिप्पलास्वादतरलाना नान्तरीयक प्रियाकरोति दु खाकरोति च । तद्यावद् ब्राह्मण्या वसुमत्या गृहोपकरणोदन्तमुपलप्स्ये । (इति परिक्रामति) (प्रकाशम्) वत्स गालव, क्व तावद् ब्राह्मणीमन्वेषयामि ?

गालव—भगवन्, एषोटजाजिरे नलिन्या किमपि मन्त्रयन्ती तत्रभवती तिष्ठति ।

श्रीदामा—(विलोक्य) कथ प्रफुल्लमुग्धकमलेवाद्य ब्राह्मणी ।

गालव—भगवन नित्य प्रसन्नेव तत्रभवती । यत —

तिमिरागमशून्याना दिशन्तीना रज क्षयम् ।
वापीनाञ्च कुलस्त्रीणा सत्त्वयत्नात् प्रसन्नता ॥ ७ ॥

गालव—स्वयमेव प्रकाशमेष्यति ।

नलिनी—तदो तदो । [ततस्तत]

वसुमती—तदो तेण चुवुग्रम्मि ग्रह धारिदा। [ततस्तेन चिवुकेऽह धृता।]

श्रीदामा—(सासूयम्) कथ चिवुकग्रहोऽपि ।

नलिनी—तदो तदो । [ततस्तत]

वसुमती—ग्राणदुव्वेगेण विसुमरिदह्मि। (स्मृत्वा) तदो तेण दिव्वरूविणा गगणगण-कसकुभस्स कुभिणो पुट्ठ-वलहीए ग्रारोहिग्र ग्रह फुल्लकुसुमसणाह विविह-रुक्खभरिज्जत उज्जाण णीदा। [ग्रानन्दोद्वेगेन विस्मृतास्मि । (स्मृत्वा) तदा तेन दिव्यरूपिणा गगनाङ्गणकपकुम्भस्य कुम्भिन पृष्ठवलभ्यामारोह्या ऽह फुल्लकुसुमसनाथ विविधवृक्षभरितमुद्यान नीता ।]

श्रीदामा—कथमुद्यान नीता । ग्रलमत पर श्रुतेन ।

गालव—भगवन् कथावशेष तावत् पालय ।

श्रीदामा—(ग्रश्रुतमिव सरोषम्) ग्रपि वन्धकीस्थाने यदस्य पुरुषापसदस्यानुरागवशया-ऽनार्यकार्यपरया दौर्गत्यव्यत्यस्त श्रीदामहतक विप्रलभ्य सप्त पितृकुलानि निरयपथमवतारितानि । ग्रथवा मूर्खापसद श्रीदामहतक, ग्रनुभव साधु-तपश्चरणाग्निहोत्रादिफलम् । (ग्राकाशे) साधु रे परयोपारसिक, दुर्गत वृद्ध कुरूपञ्च मामवेत्य हर्तुमिच्छसि मत्सहचारिणीम् । एष त्वा स्मर्तव्य-पद प्रापयामि । (इति द्वित्रिपदानि गत्वा) ग्रथवा एनामेव पापका-(चा)रिणी विनीता करोमि। (इति गन्तुमिच्छति)

गालव—भगवन्, कथावशेष पालय । (इति ग्रवष्टम्भयति)

नलिनी—तदो तदो । [ततस्तत]

वसुमती—तदो तह च्चिग्र करिकधट्ठिदेण तेण पफुल्लपम्मपुण्डरीग्र-कुवलग्र-कदोह-परिमलुग्गारो वहूदमहुग्ररमहुरझकारभरिद चक्कचक्कगचग्रोरचाउरी-चरिद सरिद ग्रोग्ररिग्र दुव्वणभाग्रणम्मि सिसिर सरिदसण दुद्ध पाइदा। [तदा तथैव करिकन्धस्थितेन तेन प्रफुल्लपद्मपुण्डरीककुवलयकन्दलपरिमलो-द्गरप्रभूतमधुकरमधुझङ्कारभरित चक्रचक्राङ्गचकोरचातुरीचरित सरित-मुत्तीर्य च दुर्वर्णाभाजने शिशिर शशिदर्शन दुग्ध पायिता ।]

श्रीदामा—(दन्तान्निष्पीड्य) हन्त दुरितचरितभरिते ईदृशानि सखीषु शसन्त्यास्त्वपापि न रुणद्धि गिरा ?

नलिनी—सहि, कुमुदिणीए अत्ताए अणुठ्ठिद गोरीए व्वद करेसु । जेण एदस्स सिविणअस्स सच्चत्तण पेक्खिस्ससि । [सखि, कुमुदिन्या आर्यया अनुष्ठित गौर्या व्रत कुरु । येनैतस्य स्वप्नस्य सत्यत्व प्रेक्षिष्यस्ते ।]

वसुमती—सहि अस्सवम्मि । जाणम्मि णिओओ जुज्जइ जेव्व । ता अज्जउत्तस्स सवणातिहि एद व्वद कदुअ अणुचिट्ठिस्स । [सखि, आश्रवास्मि । जानामि नियोगो युज्यत एव । तदार्यपुत्रस्य श्रवणातिथिमेत व्रत कृत्वाऽनुष्ठास्यामि ।]

श्रीदामा—शोभन स्वप्न । तदनुरूपैवेय गोरीव्रतादेशिनी नलिन्या वाणी । तत्सर्वथा शुभोदर्कैवायति प्रतिभाति ।

गालव—भगवन्, द्वाराणि खलु शुभाशुभज्ञानस्य शकुनस्वप्नादीनि । तदसशय शसित एव कतिपयैरहोभिरमुनातिशय फलस्य ।

श्रीदामा—(सावधानम्) सर्वथा नमोऽस्त्वघटितघटनापटीयसे वेधसे । तद्भवत्वदसीय-मुखादवगतस्वप्नवृत्तो यथोचित करिष्ये । (इत्युपसर्पति)

नलिनी—(दृष्ट्वा । जनान्तिकम्) सहि, एसो तुह वल्लहो उवगदो । [सखि, एष तव वल्लभ उपगत ।]

वसुमती—(भुग्नग्रीवम्) कह अज्जउत्तो । (कथमार्यपुत ।) (सहसोत्तिष्ठति)

श्रीदामा—आर्यं सुव्रते, अलमलम् ।

तपोदौर्गत्ययोगाभ्या खिन्नमेवाङ्गक तव ।
प्रत्युत्थानादिना भूय क्लेशितु तन्न साम्प्रतम् ॥ ८ ॥

(इति नाट्येन यथोचितमुपविशन्ति) युवयो रहस्यवार्तान्तपातिभिरस्माभि स्वमौग्ध्यमावेदितम् ।

नलिनी—णहि णहि तारिसो को वि रहस्सो जो तुम्ह पुरदो णिह्णवीअदि । सि-विणअ दाव पिअसहीए मह आगदो कहिद । ता कहिदसुणिदाण अम्हाण तुम्हे आअदा । [नहि नहि तादृश कोऽपि रहस्य यद् भवत पुरतो गाच्छाद्यते स्वप्न तावत् प्रियसख्या ममागत कथितम् । तत कथितश्रुतयोरावयोर्-यमागता ।]

श्रीदामा—(सादर श्रुत्वा) रमणीय स्वप्न । (सोपहासम्) निश्वसनाभरण-सुखमनुभवतु ब्राह्मणी ।

वसुमती—तुम्ह प्पसाएण । (युष्मत्प्रसादेन)

वसुमती—अज्जउत्त , सच्च एद सव्व । तहवि तुम्ह (इत्यर्धोक्ते) [आर्यपुत्र, सत्यमिद सर्वम् । तथापि तव (इत्यर्धोक्ते)]

श्रीदामा—कथमर्धोक्त्या खण्डितो वचनक्रम । किमस्माकम् ?

वसुमती—(अपवार्य) सहि, कह पूजारहाण एव्व कहिस्स। [सखि, कथ पूजार्हाणामेव कथयिष्ये ?]

नलिनी—जहट्ठिदकहणे ण दे आदीणओ । (यथास्थितकथने न ते आदीनव)

श्रीदामा—कथ मुद्रितैव वाचि ?

वसुमती—(सस्मितम्) तुम्हकुलक्कमागदो एसो जेव्व आजीवो। ता जुज्जइ गमण ति पडिभादि । [युष्मत्कुलक्रमागत एष एवाजीव । तद् युज्यते गमनमिति प्रतिभाति ।]

श्रीदामा—(स्वगतम्) इयमेव ब्रवीति । ममापि तावत्—

> **यस्त्राता जगता यमाहु निगमस्तत्त्वञ्च येनाप्यते,**
> **यस्मै योगिजनो नम प्रकुरुते यस्मात् परो नापर ।**
> **यस्यैतत्सकलत्रजीवभुजगो यस्मिन् जगद् दृश्यते,**
> **सान्द्रानन्दमय पुराणपुरुष स्याच्चक्षुषोर्गोचर ॥ १० ॥**

(इति सपुलक क्षण स्थित्वा) (प्रकाशम्) तद्भवतु यथाभिरोचते भवत्यै। अस्ति किमपि तन्नयनविषयीकर्तुमुपायनम् ।

वसुमती—(स्मृत्वेव) अण्ण किं वि णत्थि । पर रअनाण पिहुआण अत्थे पिहुआ ण् मुट्ठिमिदा ठाविदा चिट्ठ ति । ताण गठिअ वधिअ कज्जे सज्जो होदु अज्जउत्तो । [अन्न किमपि नास्ति । पर रुदना पृथुकानामर्थे पृथुका ननु मुष्टिमिता स्थापिता तिष्ठन्ति । तेषा ग्रन्थि बद्ध्वा कार्ये सज्जो भवत्वार्य-पुत्र ।]

श्रीदामा—(सविमर्श स्वगतम्) किं पृथुकै ? अथवा भक्तवत्सल स देव । (प्रकाशम्) तद् देहि । (इति गृहीत्वा ग्रन्थि बध्नाति)

वसुमती—(सस्मितम) देहीति इहज्जेव भिक्खाए पणवो भणिदो अज्जउत्तेन । (विलोक्य) गंठि वि सोह ज्जेव्व । जाणे ता अच्छदा नइला हुविस्सदित्ति सभेदि । [देहीति इहैव भिक्षाया प्रणवो भणित आर्यपुत्रेण। (विलोक्य) ग्रन्थिरपि शोभनैव । जाने ते अक्षता सफला भविष्यन्तीति शम्यते।]

श्रीदामा—अस्तु यथा तथा ।(पार्श्वे विलोक्य) गालव, नाथयावस्तावत् ।

गालव——भगवन्, अभिजिन्नामायं मुहूर्त्तः । तत् त्वरितमेव प्रास्थानिकसूक्तपठन-पुरस्सरं स्थाने प्रस्थातुम् ।

श्रीदामा——किमयमभिजित् । (ऊर्ध्वमवलोक्य) स एष दिनस्य मध्यमो मुहूर्त्तः ।

अहो माध्याह्निकी वेला । इह हि——

क्षणं मध्ये स्थित्वा गगनपरिमाणं तुलयति,
त्रयीभूते तेजस्यभिहितनिजक्रीडनरसा ।
दलत्पद्माटव्यामभिसृमरमाद्यन्मधुकरी,
मरन्दव्यात्यूक्षीमहह दधतेऽमी मधुलिहः ॥ ११ ॥

गालव——इह हि——

सवितरि ललाटतापिनि घर्मक्लमतश्चिरं [illegible] ।
पञ्चाननास्यकुहरमुच्छालुर्विशति पक्षिणां पङ्क्तिः ॥ १२ ॥

(विमृश्य । सस्मितम्)

नक्षत्रैः शशिना कृपीटजनुषा युक्तः समासादितं,
यत्तद्धर्ममयूखमालिनिरुचामाचार्यकं कुर्वते ।
पातङ्गैर्मणिभिः स्फुटद्भिरमलज्वालाकुलैर्जज्वले
न ध्वान्तापगमाय नाम्बुजवनीहासाय तत्साहसम् ॥ १३ ॥

श्रीदामा——ब्राह्मणि, साधयावस्तावत् ।

वसुमती——(सास्रम्) सुअधगधवहदोलिदचंदणसंदाणिदा सुहअरा होदु तुह मग्गा । अहं वि णलिणीसंदिट्ठं गोरीवदं जाव करेमि । [सुगन्धगन्धवहान्दोलित-चन्दनसन्तानिता सुखकरा भवन्तु युष्माकं मार्गाः । अहमपि नलिनीसन्दृष्टं गौरीव्रतं तावत् करिष्यामि ।]

(इति निष्क्रान्ताः सर्वे)

इतिद्वितीयोऽङ्कः

अथ तृतीयोऽङ्कः

(ततः प्रविशति गगनयानेन गन्धर्वः)

प्रियरूप. ——आत्मसाम्यमिति किमाश्चर्यं वयस्यस्यासीत् ।

पश्य——

> विगलितकल्मषनिवहैश्चेतोभिर्भावितोऽनुलवम् ।
> वितरति निरञ्जनोऽस्य स्वाभेद जन्मिना तरसा ॥२॥

रूपप्रिय ——तद्वयस्य, त्वया सह गच्छतो मम रासरसे भगवानपि लोचनगोचरो भविष्यति ।

प्रियरूप ——सखे, तत् त्वरित गत्वा श्रीदाम्नोऽपि प्रवृत्तिमुपालभामहे । (इति निष्क्रान्तौ)

प्रवेशकः ।

(तत प्रविशति श्रीदामा गालवश्च)

श्रीदामा ——वत्स, अद्य स्वभवनात् प्रस्थितानामस्माक जातानि कानिचिच्छुभसूचकानि शकुनानि ।

गालव ——का खलु तत्र वार्ता । शृणोतु भवान्——वामे वातायवो, दक्षिणे दात्यूहव्यूहा, पुर पारावता, कुञ्जे केकी, दिवि मिथुनानि, कूलेषु कुम्भा जलसम्भृता अनुकूला नद्यो वायवश्च ।

श्रीदामा ——(पवनस्पर्शमभिनीय । सानन्दम्)

> परागस्थगनाल्लुलब्धवर्णा आमोदशालिन ।
> हरन्ति हन्त सन्ताप सज्जना इव वायव ॥३॥

गालव ——(स्वगतम् । प्रायो वयोऽवस्थाभेदेन विषया अपि भिद्यन्ते ।

यतस्त एव मम——

> गृहीता मन्दपानीया धूतमध्यसरोरुहा ।
> दारयन्ति मन कामनाराचा इव वायव ॥४॥

(स्तोकमन्तर गत्वा) पुरोऽवलोक्य । (प्रकाशम्) भगवन्, किमिद महीमिलनायानविततव्योमेव निखिलनिशावमानापगततिमिरविश्रामधामेव उच्छलल्लीयमाननागनिकरमिव दृश्यते ।

श्रीदामा ——वत्स, उच्छलद्दहलवीचिनिचयचुम्बितचपलवेलादनदेलादनदलननागर सागर । य एष ——

> उच्छलद्दहलोरनोलचलत्कम्बुकुलच्छलात् ।
> नयत्यगण्डमिहिकाखण्डान् शीतांशुमण्डलम् ॥५॥

यश्च—दिवस इव चलदहिमकर, श्रोतुरिव धृतगिरिकानन, माङ्गलिकलय इव शोभिततरङ्गमाल, विन्ध्य इव पालितदण्डायामवेल, नानागममहितोऽपि वुद्धख्याततत्त्व, दुग्धपरिणाम इव लब्धोचितदधिभाव, । य एप —

क्रामत्पाठीनपुच्छक्षुभिततिमिकुलाकाण्डसङ्घट्टलोलत्–
पानीयात्कवेल्लन्मणिगणकिरणाकीर्णकिर्मीरिताम्भ ।
एनामन्वर्थसञ्ज्ञा जलनिधिवसना चित्रशालीयधाटी–
मालम्बन् बालवीचीनिचयकुहकतो बद्धनीवि करोति ॥६॥

गालव. —(विलोक्य । सभयम्) भगवन् पश्य । अयमपानिधेर्मध्यादाकाशचुम्बिशिखनिवह शिखावान् वाडव समुल्लसति ।

श्रीदामा —(सस्मितम्) वत्स, नासौ वाडव । विद्रुतजात्यभास्वरकार्तस्वरमयी द्वारिका ।

गालव —कथ द्वारका प्राप्तो स्व ?

श्रीदामा —अथ किम् ।

गालव —(सहर्षम्) तर्हि त्वरयतु भगवान् । येनातिथिसमय एव श्रीकृष्णदेवस्य मन्दिर प्राप्य षड्रसोपेतचतुर्विधाभ्यवहार्येणौदर्यवीतिहोत्र निर्वृत्तचापल कुर्व ।

श्रीदामा —(सरोषस्मित तिर्यगक्ष्णा पश्यन्) धिङ् मर्ख, नित्यमौदर्यकार्यमन्तरा न ते विचार्यमस्ति । (पुरोऽवलोक्य) (सहर्षम्) कथमिय पूरपूर्वदर्शनापि नयनयोरमृतविन्दुसन्दोहान् निस्यन्दयति । यैषा गोमती प्रत्यासन्नगोकुला मधुरा केवल नात्र गमनस्वमा । यत्र च पीताम्बरा अनन्तभोगिभाज प्रत्यासन्नपद्मालया गोविन्दविग्रहा इव ग्रहा । येषु च न गदाचिता, न वैकुण्ठाश्रया, न विपक्षोद्धृता, नानङ्गजनका , नाक्षिगतजैवातृका, अपि समाहितधनञ्जया युधिष्ठिरप्रिया कलितमुदर्शना, रचितरमणीरागा अच्युता विहितकला-कलापसज्जना सज्जना । या च पातालपुरी-कञ्चुकिभि कुण्डलिभि सकम्बलैर्नागैरावृता एककर्कोटक मश्चरदनेककर्कोटकाऽपहसति । कुबेरकपालिगोत्रभृत्तपनप्रेतपतिरक्ष पाशिप्रभञ्जनचन्द्रादिममधिमधिष्ठिता नैतद्विधजनाश्रया स्वर्गभूमिमपि ।

गालव —(पुरो विलोक्य) पुरत इद दृश्यते महदन्तराल तत् पूरयितु सुवर्णसमृद्धिर्नासीत् कृष्णदेवस्य ।

श्रीदामा —(सस्मितम्) वत्स, गोपुरमेतत् (विलोक्य) दक्षिणेन गोमती दरीदृश्यते कस्यचित् सुपर्वण आलय तदुपस्पृश्य तस्या पुण्य पय तञ्च प्रदक्षिणीकृत्य यावत् पुर प्रविशाव ।

(इति परिक्रम्य तथा कृत्वा देवालयाभिमुख दृष्ट्वा) अये अय भक्ति- रहित विमुख सिहमुख ! (सप्रणिधानम्)

पाहि दनुजसङ्कृतघातकारण रणचटुर्लासह तुलितमुखपद्म !

वज्रसखनख विपुलबल वेदसार कृतविभव चक्रखण्डित-
सकलखल-देवमुनिमनुजवन्द्यपादपङ्कज शशिविमल
ससारबन्धविघटनकुशल विषयवासनाछेदकर
धर्मार्थकाममोक्षद रसिकचक्रपिनाकाभयदकर ॥७॥

अपि च--

चिन्तयन्निव भक्ताना मोक्षमार्गमनुक्षणम् ।
व्यादाय मुखमास्ते य स देव पातु न सदा ॥८॥

(इति स्तुत्वा नत्वा परिक्रामति) वत्स, क्वचिद्धाराभृतो श्वानसीश्च वल्गयन्ति सादिन क्वचित्पुष्करिण कुण्डलीकृतकरान्नागानभिनन्दन्ति नरेन्द्रा, क्वचिदरि-पृष्ठपातिनो रथानमानिनश्च वृथा एव कर्षन्ति, क्वचिद् गुप्तमन्त्रा अक्षपरि-वृत्तिजातसख्या मन्त्रिणो दृश्यन्ते, क्वचित् कषायितनेत्रा दण्डधरा धार्ष्टिका यतयश्च विलोक्यन्ते, क्वचित् कृतसुवर्णालङ्कारजातिवृत्तयो नाडिन्धमा कवयश्च वीक्ष्यन्ते, क्वचिद् विन्दुमती जाति सभा च भासते, क्वचित् काव्यैरिव सप्रासैं मयमकैश्चारैरुपचरिता प्रतोलीयम् । तद् विविक्तपथा श्रीकृष्णप्रासादद्वार-मासादयाव । (इति परिक्रामत)

(तत प्रविशति रुक्मिणीसत्यभामाभ्या सह पर्यङ्कस्थ श्रीकृष्ण मञ्चपादावलम्बी भूमिस्थो विदूषक परितश्च स्त्रीकदम्ब ।)

कृष्ण —वयस्य, मानो नामावलाना कामुकचित्तवशीकरणाय कार्मणम्, येन पारिजातोद्देशेन धृतमानयाऽनया दूरमाकुलीभूत नश्चित्तम् ।

विदूषक —मज्झण्णे छुधाए वह्मणस्स मण व । [मध्याह्ने क्षुधया ब्राह्मणस्य मन इव ।]

कृष्ण —(सस्मितम्) तदागते पारिजाते क्षणमपगतमानाभ्यामाभ्या जह्नु कलिन्दतन-याभ्यामिवादन्यात् निर्वृत्तोऽस्मि ।

विदूषक —(भामा विलोक्य) वअस्स, दाणि भामाए माणो पाहुणिओ त्ति तक्केमि । [वयस्य, इदानीं भामाया मानो प्राघुणिक इति तर्कयामि ।]

कृष्ण —तथा मानान्या तत्र ना क्षनि ?

विदूषक.—मह बह्मणी वि एव्व चिअ भामादेइए चरिद सुणिअ सअ करिस्सदि त्ति चित उव्वहेमि । [मम ब्राह्मण्यपि एवविध भामादेव्याश्चरित श्रुत्वा स्वय करिष्यतीति चिन्तामुद्वहामि ।]

कृष्ण —कि तेन ?

विदूषक —तुए उण घुणक्खर विअ उवणीदो देवरुक्खो मारिसस्स सक्को सिह ज्जेव उप्पाडइस्सदि । [त्वया पुनर्घुणाक्षरमिवोपनीतो देववृक्षो मादृशस्य शक्त सिह इव उत्पादयिष्यति ।]

(तत प्रविशति प्रतिहारी)

प्रतिहारी —(सप्रणामम्) देअ, सिरिदामत्तिणामहेओ को वि बह्मणो महत्तेवामिणा पडिहारभूमि अलकरेदि । [देव, श्रीदामेतिनामधेय कोऽपि ब्राह्मणो महान्तेवासिना प्रतिहारभूमिमलङ्करोति ।]

कृष्ण —(सस्मरण सोत्कण्ठम्) कथ श्रीदामा । तत् त्वरित प्रवेश्यताम् ।

विदूषक —को सो सिरिदामा ? [कोऽसौ श्रीदामा?]

कृष्ण —अस्मत्सहाध्यायी प्रियवयस्य ।

विदूषक —अह्मतो वि वअस्सो ? [अस्मत्तोऽपि वयस्य]

कृष्ण —एकतीर्थाश्रयत्वे किमु वक्तव्यम् ।

विदूषक —ता सो ज्जेअ पिअवअस्सो होदु । अणुजाणीहि म णिअबह्मणीए चरणा सुस्सूसिदु ।
[तत् स एव प्रियवयस्यो भवतु । अनुजानीहि मा निजब्राह्मण्याश्चरणौ शुश्रूषितुम ।]

(प्रविश्यापटीक्षेपेण पुरुष)

(ससम्भ्रमम्) देअ, आअदे आअदे । [देव, आगत आगत ।]

एसो अग्गे कहेम्मि । सभमेण विशुमलिदे कहणिज्जे । (क्षण स्मृत्वा) भट्टके, आअदे दलिद्देण आलिंगिदेव्व किशे शिलाजालमेत्तदशणिज्जे शतखडसूज्जतवसणपेलतगठिदगठिसठवणवावडकले कण्णाशवेद लबिज्जतकुच्चकुच्चरछादिअदेवासिएण ददाइपशालिअ हग्गेअबम्हण त्ति भणते दुवाले ठिदे हग्गेत पेक्खिअ टखदवराथले पेटपुट्टिभेअशण्णा शुण्णिअजणगहिलधवलिज्जो वदलोअणताफए अदेवासिए ददाइ पसालिअ हग्गेअ बम्हए त्ति भएते दुवाले ट्ठिदे हग्गे त पेखिअ एशे किमक्कले किभूदे कि पालड एत्ति शकिए शभमभमिज्जते देअसआश आगदे । [एपोऽग्रे कथयामि । सम्भ्रमेण विस्मृत कथनीयम् । (क्षण स्मत्वा) भर्त आगतो दारिद्र्येणालिङ्गित इव कृशशिराजालमात्रदर्शनीये शतखण्डसूच्यमानवसनपरिधितग्रन्थितग्रन्थिसस्थापनव्यापृतकरे कृष्ण लम्बितकूर्चसञ्छादितवक्ष स्थले उदरपृष्ठभेदसज्ञाशून्यितजनगर्तिलधवलित पश्यल्लोचनतारकै यदेवाशिषेण दन्तान् प्रसार्य अह ब्राह्मण इति भणन् द्वारे स्थिते सति त प्रेक्ष्य एप कि कृते, किभृते, कि न इति शङ्कया सम्भ्रमभ्रममाण देवसकाशमागत ।)

विदूषक —(सहासम्) रमणीओ वअस्सो प्पिअवअस्सस्स । [रमणीयो वयस्य प्रियवयस्यस्य ।]

(सक्रोधम्) धिङ् मूर्ख, स्वानियोगेऽपि च क्रमसे ।

(पुरुप साशङ्कमोष्ठान्तर एव किञ्चिद्वदन् मनागपसरन् निष्क्रान्त ।)

कृष्ण —(प्रतिहारिण प्रति) सुभ्ते, शीघ्र प्रवेशय ।

प्रतीहारी-जद्देवो आणवेदित्ति । [यद्देव आज्ञापयति] (इति निष्क्रान्त)

(तत प्रविशति गालवेन सह श्रीदामा)

श्रीदामा —(पुरोऽवलोक्य । सहपम्) वत्स, पश्यसि विविधनूत्न रत्नस्तम्भसङ्क्रमदनेकप्रतिबिम्बजनितजनता भ्रमे क्वचित् स्फुरदनेकपद्मरागभित्तिविसृमरमयूखविसरकृतबालातपशङ्काविजृम्भदम्भोजाहितदिवसनिश्चयापगतरथाङ्गनामपतत्रिविरह भ्रमे, क्वचित् स्फटिकस्थलीप्रतिफलितमयूरग्रहणायामितलीलाकपिनि, क्वचिन्मणिमयमहीर्[illegible]थितरत्नपतगदशनपतदनेकशकुन्ताग्ध्धग्राम्यधर्म भासिनि, क्वचिन्निर्मुक्त[illegible]यन्त्रनिर्म[illegible]जलधारागिरागत [illegible]रिगादिफलवृत्तकुतूहले क्वचिन्मन्दप[illegible]धूत[illegible]दि[illegible]नरत्नागर[illegible]फलप्रसूनपरिमलवहन्ने म[illegible]न्दवलामुखकमलामोद[illegible]न्दिन्दिरमन्दिरे मुक्तामलमुक्ताफलजवनिकाजालाया सम्मुखीनशालाया मणिमयम[illegible]धिष्ठितपर्यङ्कविशेषसूक्ष्मगर्भ्पूरितनूलिकाया तदुपधानाहितचीन[illegible] [illegible]नीरन्ध्रान्तरन्ध[illegible]नामी[illegible]रतनूनिकायामासीन [illegible]मी[illegible]भावि-

विदूषक —श्रीदामान प्रति) कण्हसवधेण अह वि तुह वअस्स्से तेण प्पणमामि। [कृष्णसम्बन्धेनाहमपि तव वयस्य । तेन प्रणमामि]

(श्रीदामा प्रणमति)

विदूषक —वअस्स, पज्जकोवरि उअवेसिदु जइ लवकुच्चोच्चओ कालण भोदि ता अह वि कुच्च वढ्ढावइस्स। [वयस्य, पर्यङ्कोपरि उपवेशितु यदि लम्बकूर्चोच्चय कारण भवति तदहमपि कूर्च वर्द्धापयिष्ये।]

कृष्ण —मैव मैवम्।

विदूषक —(सहर्षम्) सुणिद मए ण एदस्स पत्तीए मम वि खडखज्जआभरिखादव्वा हुविस्सदित्ति। [श्रुत मया नन्वेतम्य पत्या ममापि खण्डखाद्यकाभरिखादव्या भविष्यतीति।]

कृष्ण —क कोऽत्र भो।

प्रतीहारी —(प्रविश्य) आणवेदु देओ। [आज्ञापयतु देव।]

कृष्ण —आहूयतामतिथिसपर्योपकरणसहित पुरोहित।

प्रतिहारी —ज देओ आणवेदि त्ति। [यद्देव आज्ञापयतीति] (इति निष्क्रम्य पुरोहितेन सह प्रविशति) देव, एसो ग्गहीदोवअरणो पुरो पुरोहिदो चिट्ठदि। [देव, एप गृहीतोपकरण पुर पुरोहितस्तिष्ठति।]

कृष्ण —आचार्य, श्रौतेन विधिना पूजयातिथिम्। अथवाऽहमेव चरणनिर्णेजनविधि चरिष्ये। देवी तावदावर्जयतु जलधाराम्।

पुरोहित —यथाभिरोचते भवते।

(कृष्णस्तथा करोति। रुक्मिणी जलधारा विसृजति सत्यभामा चेलाञ्चलेन पादौ प्रोञ्छति। कृष्ण पदनिर्णेजनाम्भसा देव्यो स्वस्य च मूर्धानमभ्युक्षयति पुरोहित यथावदर्चयति।)

विदूषक —श्रीदामान प्रति) कण्हसवधेण अह वि तुह वअस्स्से तेण प्पणमामि। [कृष्णसम्बन्धेनाहमपि तव वयस्य । तेन प्रणमामि]

(श्रीदामा प्रणमति)

विदूषक —वअस्स, पज्जकोवरि उअवेसिदु जइ लवकुच्चोच्चओ कालण भोदि ता अह वि कुच्च वढ्ढावइस्स। [वयस्य, पर्यङ्कोपरि उपवेशितु यदि लम्वकूर्चोच्चय कारण भवति तदहमपि कूर्च वर्द्धापयिष्ये।]

कृष्ण —मैव मैवम्।

विदूषक —(सहर्षम्) सुणिद मए ण एदस्स पत्तीए मम वि खडखज्जआभरिखादव्वा हुविस्सदित्ति। [श्रुत मया नन्वेतस्य पत्या ममापि खण्डखाद्यकाभरिखादव्या भविष्यतीति।]

कृष्ण —क कोऽत्र भो।

प्रतीहारी —(प्रविश्य) आणवेदु देओ। [आज्ञापयतु देव।]

कृष्ण —आहूयतामतिथिसपर्योपकरणसहित पुरोहित।

प्रतिहारी —ज देओ आणवेदि त्ति। [यद्देव आज्ञापयतीति] (इति निष्क्रम्य पुरोहितेन सह प्रविशति) देव, एसो गहीदोवअरणो पुरो पुरोहिदो चिठ्ठदि। [देव, एष गृहीतोपकरण पुर पुरोहितस्तिष्ठति।]

कृष्ण —आचार्य, श्रौतेन विधिना पूजयातिथिम्। अथवाऽहमेव चरणनिर्णेजनविधि चरिष्ये। देवी तावदावर्जयतु जलधाराम्।

पुरोहित —यथाभिरोचते भवते।

(कृष्णस्तथा करोति। रुक्मिणी जलधारा विसृजति सत्यभामा चेलाञ्चलेन पादौ प्रोञ्छति। कृष्ण पदनिर्णेजनाम्भसा देव्यो स्वस्य च मूर्धानमभ्युक्षयति पुरोहित यथावदर्चयति।)

सुमित्र —(सप्रणामम्) इत इतो देव । (सर्वे परिक्रामन्ति) इद तत् प्रमदोद्यानद्वारम् । तत् प्रविशतु देव । (सर्वे प्रवेश नाटयन्ति)

कृष्ण —(पवनस्पर्शमभिनीय)

वने लताना कुसुमाभिमर्श कृत्वाम्बुकेलि सह पद्मिनीभि ।
भृङ्गीभिरङ्गीकृतगीतिरेति कामीव काम शनकै, समीर ॥१६॥

श्रीदामा —न खलु न खलु ।

कृताभिषेका सरसीषु पुष्पमधूलिकाभूतिभर दधाना ।
भृङ्गाक्षमाला पवना प्रयान्ति द्विजा इव स्पर्शभियातिमन्दम् ॥१७॥

कृष्ण —(सस्मितम्)

स्पृशति लता पुष्पवती कीलाल सर्वतो वहति ।
पिवति सम म‍धु मधुरै कथमग्रमास्ता सखे पवन ॥१८॥

सुमित्र — विश्रामस्थानमिव मिहिकाया, कुलगृहमिव वर्षाया, उत्पत्तिस्थानमिव चन्द्रलोकस्य, निर्वृतिपदमिव शीतजातस्य, आगारमिव शृङ्गारस्य, परिपन्थीव धर्मस्य, निवारकमिव रविकिरणाना, त्यक्तमिवालोकै, निशामयमिव, तिमिरमयमिव, छायामयमिव, सुखमयमिव, जनक विकाराणाम्, निर्वापकमिन्द्रियाणाम्, अनुभावक भावानाम्, उन्मादन मदानाम्, उद्दीपकमप्यालम्बन रसाना प्रमदोद्यान पुर पश्यतु देव ।

यत्र च घनसार-पीतसार-त्वक्सार-सिन्दुवार-कोविदारमन्दार-सहकार-कर्णिकारशितिसार-जम्बीर-वानीर-करवीर-पाटीर-वीरपुर-खपुर-मालूर-खदिर-कदर-वदर-ताल-तमाल--हिन्ताल-कृतमाल-नक्तमाल-कन्दरालचलदल-दधिफल -जन्तुफल-निचुल पिचुल- चतुरङ्गुल-मञ्जुल-वञ्जुल मधुष्ठील-मधुल-गुडफल-विडुल-फेनिलोद्दालकदलीलाङ्गलीलवलीशाल्मली--धात्री-चित्री-शोभाञ्जनाञ्जन-जम्बू-सर्ज-खर्जूर-पर्जन्यार्जुन-जपा न्यग्रोध-शिग्रु-मुनिद्रु-पारिभद्र- सर्वतोभद्र-भद्रपर्ण-सप्तपर्ण - पर्णस्वर्णवर्ण - प्लक्षाक्षादिवृक्षलक्षलक्षितक्षणे, काश्चनोत्का इव कलितोद्वेगा, काश्चन कलहान्तरिता इव प्रथम कलिकोपक्रमभाज, पुनर्मदनवाणासनातिमुक्तशिलीमुखभिन्ना, काश्चन स्वाधीनपतिका इव प्रियालापनसङ्गता, स्वच्छन्दकृतवृक्षारोहा, काश्चन रूपगर्विता इव त्यक्तकाञ्चना, काश्चन गणिका इव स्पृष्टपृथुलकुचा, काश्चन कुलटा इव नर्तिताक्षा, काश्चन निशाचर्य इव पीतर-

कृष्ण —वयस्य, कच्चित् स्मरस्यावयोस्तत् ।

अम्भोवाहविमुक्तवारिनिवहे आप्लाविताया भुवि,
न्यञ्चद्वैद्युतवह्निविभ्रमविधिन्यस्ते समस्ते जने ।
आदेशादथ देशिकस्य दवतो दर्वीकरेणावृता––
न्येधास्यानयतो कुतोऽपि समभूद्यत् कोऽपि कम्पक्रम ॥१५॥

श्रीदामा —सखे, तस्मिन्नहनि प्राणत्राणमेव न कृत कृपावता भवता । किमु वक्तव्य स्मर्यते इति ।

(नेपथ्ये शखस्वनानन्तरम्)

भो भो क्रियन्ता प्रत्यग्रचन्दनद्रवादिग्धस्निग्धा सत्वरचत्वरा, तभ्यन्ता देशिकानि रवकाशकसूक्ष्माशुकगृहाणि, प्रसार्यता परिताप्यगरवीर्धूपधोरणी, समाहूयन्ता भोजका, प्रक्षाल्यन्ता काञ्चनमणिमयानि पात्राणि, स्थाप्यन्ता त्रिपादिका, उपनीयन्ता शशिशिशिरसुरभिसलिलभरिता रत्नभृङ्गारा, सञ्चार्यन्ता परिवेपका, परिवेप्यन्ता व्यञ्जनानि, अपसार्यन्ता नयनदूषका, तर्प्यन्ता नाकिन, हूयन्तामनला, पूज्यन्ता महीसुरा, दीयन्ता बलय, निरुध्यन्तामन्यजनसञ्चारा । यत आगत एव भगवानशेपजनताकृतसेवो देवो वासुदेव इति ।

कृष्ण —(आकर्ण्य) वयस्य, त्वरयति परिजनोऽभ्यवहारेतिकर्तव्यतोपकरणेपु । तन्निर्वर्त्य मध्याह्निकमिमा वेला प्रमदोद्यान एव वाहय।म ।

श्रीदामा —यथाभिरोचते वयस्याय ।

विदूषक —(अपवार्य) दिठ्ठिआ परिजणसद्देहि जुण्णमक्कडमुहादो व्व मोइदो प्पिअवअस्सो । वअस्स, अदिहिप्पमादेण मह वि रसणा मिठ्ठाइ रसदु । णव्वरवह्मणी गलमि अलस्खलइ । [दिष्ट्या परिजनशब्दै जीर्णवानरमुखादिव मोचित प्रियवयस्य । वयस्य, अनिथिप्रमादेन ममापि रमना मिष्टानि रसतु । नवलब्राह्मणीगलेऽल स्खलति ।]

सुमित्र —(सप्रणामम्) इत इतो देव । (सर्वे परिक्रामन्ति) इद तत् प्रमदोद्यानद्वारम् । तत् प्रविशतु देव । (सर्वे प्रवेश नाटयन्ति)

कृष्ण —(पवनस्पर्शमभिनीय)

वने लताना कुसुमाभिमर्श कृत्वाम्बुकेलि सह पद्मिनीभि ।
भृङ्गीभिरङ्गीकृतगीतिरेति कामीव काम शनक, समीर ॥१६॥

श्रीदामा —न खलु न खलु ।

कृताभिषेका सरसीषु पुष्पमधूलिकाभूतिभर दधाना ।
भृङ्गाक्षमाला पवना प्रयान्ति द्विजा इव स्पर्शभियातिमन्दम् ॥१७॥

कृष्ण —(सस्मितम्)

स्पृशति लता पुष्पवती कीलाल सर्वतो वहति ।
पिबति सम मधु मधुरं कथमयमास्ता सखे पवन ॥१८॥

सुमित्र — विश्रामस्थानमिव मिहिकाया, कुलगृहमिव वर्षाया, उत्पत्तिस्थानमिव चन्द्रलोकस्य, निर्वृतिपदमिव शीतजातस्य, आगारमिव शृङ्गारस्य, परिपन्थीव धर्मस्य, निवारकमिव रविकिरणाना, त्यक्तमिवालोकैः, निशामयमिव, तिमिरमयमिव, छायामयमिव, सुखमयमिव, जनक विकाराणाम्, निर्वापकमिन्द्रियाणाम्, अनुभावक भावानाम्, उन्मादन मदानाम्, उद्दीपकमप्यालम्बन रसाना प्रमदोद्यान पुर पश्यतु देव ।

यत्र च घनसार-पीतसार-त्वक्सार-सिन्दुवार-कोविदारमन्दार-सहकार-कर्णिकारशितिसार-जम्बीर-वानीर-करवीर-पाटीर-वीरपुर-खपुर-मालूर-खदिर-कदर-वदर-ताल तमाल--हिन्ताल-कृतमाल-नक्तमाल-कन्दरालचलदल-दधिफल--जन्तुफल-निचुल पिचुल- चतुरङ्गुल-मञ्जुल-वञ्जुल मधुष्ठील-मधुल-गुडफल-विडुल-फेनिलोद्दालकदलीलाङ्गलीलवलीशाल्मली -धात्री-चित्री-शोभाञ्जनाञ्जन-जम्बू-मर्ज खर्जूर-पर्जन्यार्जुन-जपा-न्यग्रोध-शिग्रु-मुनिद्रु-पारिभद्र- सर्वतोभद्र-भद्रपर्ण-सप्तपर्ण - पर्णस्वर्णवर्ण - प्लक्षाक्षादिवृक्षलक्षलक्षितक्षणे, काश्चनोत्का इव कलितोद्वेगा, काश्चन कलहान्तरिता इव प्रथम कलिकोपक्रमभाज, पुनर्मदनवाणासनातिमुक्तशिलीमुखभिन्ना, काश्चन स्वाधीनपतिका इव प्रियालापनसङ्गता, स्वच्छन्दकृतवृक्षारोहा, काश्चन रूपगर्विता इव त्यक्तकाञ्चना, काश्चन गणिका इव स्पृष्टपृथुलकुचा, काश्चन कुलटा इव नर्तिताक्षा, काश्चन निशाचर्य इव पीतर-

त्तपलाशाश्रिता, काश्चन गोप्य इव रक्तकृष्णा, काश्चन पाण्डवपक्षपातिन्य इव पीतार्जुना, काश्चन नद्य इव घटिततालाः कृतशैलूषाश्रया विधृतप्रवालाश्च काश्चन गर्भिण्य इव धृतदोहदा, काश्चन प्रजाता इव सुप्रसवा, काश्चन वैद्यक्रिया इव सफला, काश्चन मुग्धा इव सलज्जा, काश्चन चन्द्रकला इव सलक्ष्मणा, काश्चन विप्रलब्धा इव रुचिरमङ्केतकमधिष्ठिता, काश्चन द्रुपदजा अपि कृतशकुनिपक्षपाता, काश्चन सुभद्रा अपि कृतभीमाश्रया, काश्चन इङ्गितज्ञा इव सूचितवर्णवरा, काश्चन भोगिभोगभाजोऽपि वियोगिन्य परितो वीरुधो दृश्यन्ते।

यत्र च भासुरे अपर्णात्व गिरिजाया, अनकेशित्व यतिविधवादिषु, भिन्नपत्रत्वमाजिपराजितरथादिषु, गतपुष्पत्व जरठयोषित्सु, उच्छिन्नमूलत्व भवद्रिपुषु, स्थाणुत्व शङ्करे, विशाखत्व कुमारे दृश्यते न लताद्रुमेषु। यत्र च निरुद्धप्रभञ्जना धृतदमना योगिन इव केदारा। यत्र च सुरभीलतिर्दृष्टमात्रैव तनोति वपोल्लासाम्। यत्र च राशय इवोपान्तस्थितकुम्भा, दृष्टमीनकर्कमकरमिथुनोल्लासा कासारा, यत्र च कोकिल-कोक चकोर-कलहंस कलरवकङ्किकीदिवि-कलिङ्ग-कलविङ्क-करेटु कृकण कृकवाकु कण्ट कालकण्ठक क केकिलव-तित्तिर-कीर कारण्डव कुक्कुभ-कोयष्टिक-वर्तक-चातक पुष्करालादिविविधविष्किर-जातिजनितकूजित भिन्नालिपुञ्ज-मञ्जुगुञ्जितरञ्जितजलजजातजातरणरणकाविष्करणे क्वचित् सरसि मञ्चत्करेणुभिन्नशतपत्रे पुण्डरीककोकनदे, क्वचिद्देशे ललिततृणराजौ मरुत्तटे, क्वचिद्देशे जलभरभृते नवोलपालोलहारिणे पवनाय स्पृहयति जना। किं बहुना सर्वरामणीयकानामाराम-भवनमिद क क नर न रञ्जयति?

कृष्ण —साधु सुमित्र, साधूपलक्षित रक्षितञ्च। यत-इतो बकुलानामितोऽशोकानामितो दाडिमानामितो बीजपूराणामितो हाटहराणामितश्चम्पकानामित पुन्नागानामित कादम्बानामितो नारङ्गाणा प्रतोलीषु तत्तदालवालवलनान्दिमितेन मतीकटाक्षेणेव तावन्मात्रमञ्चारमामलेन पुन सारणीषु वामुलानयनभङ्गभङ्गुरेणा-ञ्चित वल्लनानि चेतोजन्मानम्।

श्रीदामा —मन्ये, इत पश्य कुतुकम्। निकनजिनकिल-मनल्लिका-मल्लिकापरिमल-पादलिप्तमङ्कारमुखरिनिगिरि-मरगो गृहीतम्द्राक्षमाला जपन्त इव लक्ष्यन्ते।

[illegible] —[illegible] [illegible] नवो।

विदूषक —चउक्के ठ्ठिद वणवण्णण । ता अह पि पचमो हुविअ वण्णेमि । [चतुष्के स्थित वनवर्णनम् । तदहमपि पञ्चमो भूत्वा वर्णयामि]

कृष्ण —कि पञ्चत्व प्राप्य ?

विदूषक —त पावेदु मह ससुरस्स पुत्तओ । वअस्स, पेक्ख पेक्ख । इदो कु दकलिआओ कूर विअइल्लपसवाइ दहीइ मालइपुप्फाइ कढ्ढिअदुद्दाइ कुरटआआइ ढइसुअ पुण्णाग-मजरीओ असोअवत्तिआओ णारिगफलाइ मोदअ मरुवअकदवमणआ-पत्त-साकाइ किमुआसोआइ आमिसाइ क दुआ परिवेसअनीव्व वणदेवदाहि भु जतीए व सिरीए । [तत् प्राप्नोतु मम श्वसुरस्य पुत्रक । वयस्य, पश्य पश्य । इत कु-न्दलतिका भक्त विचकिलप्रसवानि दधीनि मालतीपुष्पाणि क्वथितदुग्धानि कुरण्टकान्याढकीसूद पुन्नागमञ्जर्य अशोकवर्तिका नारङ्गफलानि मोदक मरु-वककदम्वमनकापत्रशाकानि किशुकाशोकानि आमिषाणि कुतुकात् परिवेशयन्तीव वनदेवताभि भुञ्जन्ती वनश्रियम् ।] (सर्वे हसन्ति)

कृष्ण —(सस्मितम्) धिङ् मूर्ख, भोज्यातिरिक्तो न ते कस्यापि कारणस्य विषय ।

विदूषक —मह वह्मणीए प्पमाएण सव्वकरणाण वि विसआ भोअणिज्जा ज्जेव्व । [मम ब्राह्मण्या प्रमादेन सर्वकरणाना विषया भोजनीया एव ।] (सर्वे पुनर्हसन्ति)

कृष्ण — (परितो विलोक्य) सखे, पश्य पश्य ।

छायापतौ समन्तात् ? करसञ्चार कुर्वति दिशासु ।
उत्सङ्गयन्ति तरवो मुग्धवधूटीमिव च्छायाम् ॥१६॥

सुमित्र —देव, तदेतस्मिन् अवसरे सुरेणुभूभागतो गतो रजनिकर करणतापनाशाय मृणा-लिकाना कासार सारञ्चात्र ज्वलत्सु दिनमणिमणिषु वाचयमेषु कोयष्टिकेषु ताम्यत्सु पथिकेषु तप्ते पिशुनमनसीव मरुति प्रसरति चण्डमहसि धर्मक्षयादिव तरुणकिसलयच्छायाधिष्ठितासु वनदेवतासु रविकिरणेष्वपि तरुपत्रान्तरालानि निजतापभियेव गाहमानेषु, तरुष्वपि नवकिसलयच्छलेन जलार्थनाय रसना प्र-सारयत्सु, चण्डोद्योतभियेव पथिकवारणार्थ करान् प्रसार्य स्वयमपि मन्दीभवति भगवति पद्मबन्धौ विहस्तस्यापि जगतो रामणीयकमाकलयतु देव ।

तथाहि—

कालेऽस्मिन् प्रथमानसूरकिरणव्याजृम्भदम्भोजनि-
स्फायत्कोशगलन्मरन्दमदिरापानप्रमत्तालिनि ।
जाने पक्ष्मपुटानि पक्ष्मलदृशामाश्रित्य चेतोऽजनि,

छायेच्छावशत कटाक्षकृपणाद् बाणान् मुहुर्मुञ्चति ॥२०॥

तदस्मिन् गुञ्जदलिपुञ्जवञ्जुलकुञ्जमञ्जरीरज पिञ्जरिते शिञ्जानमञ्जीरराजिरुचिररणितमदकलकलहंसमण्डलीरञ्जिते स्वमरीचिनिचये चमत्कारवञ्चितचन्द्रजित्वरे स्फाटिकमयचत्वरे क्षणमुपविश्य मनोविनोदमनुभवतु देव ।
(सर्वे परिक्रम्य यथोचितमुपविशन्ति)

कृष्ण —(विलोक्य) वयस्य, पश्य पश्य—

अवतरति गगनशिखरात् चरमगिरि पद्मिनीबन्धौ ।
नयतीव शाखिनिवह प्राचीमुरसङ्गत इछायाम् ॥२१॥

विदूषक —वअस्स, पेक्ख पेक्ख । सिहरमेत्तम्मि ठिदाइ रइणो जरठवाणरराणुकरणाइ किरणाइ उव्वहता तरुणोणुहरेति तुह सिरिअ । [वयस्य, पश्य पश्य । शिखरमात्रे स्थितानि रवे वृद्धवानरराणुकरणानि किरणान्युद्वहन्त तरवोऽनुहरन्ति त्वच्छ्रियम् ।] (परितो विलोक्य) हीणामहे ! महगसरिच्छाइ दिसामुहाइ भअत्तमसेण किदाइ । [आश्चर्यम्, मत्तङ्गसदृशानि दिशा मुखानि भवत्तमसा कृतानि ।]

श्रीदामा —सखे, सत्यमुक्त मारायणेन । यत —

अस्तपातुकघर्मांशुकिरणारुणिताञ्चलम् ।
वस्नेऽन्तराले तिमिरश्यामल जगदम्बरम् ॥२२॥

गालव —भगवन्, पश्य पश्य ।

विगलितकिरणावलीनिकाय,
दिनमणिमण्डलमञ्जसा विभान्ति ।
प्रणयकुपितहूणसुन्दरीणा,
वदनसरोरुहसञ्चितोपमानम् ॥२३॥

विदूषक —ता उ जुअ ज्जेव्व किं ण भणीअदि मक्कडमुहसरिच्छो त्ति । [तद् योग्यमेव किं न भण्यते मर्कटमुखसदृश इति ।]

श्रीदामा — यैर्भानुना जगन्नद्ध तद्धस्तैरेव रश्मिभि ।
दिष्ट्या स पात्यतेऽम्भोधौ न स्वकर्म भुनक्ति क ॥२४॥

गालव —भगवन, पश्य पश्य ।

दिशा निर्यातिनो दूर शश्व्य महसा निधि ।

वारुणी तरसा याति,

श्रीदामा — ... .क्व त्रपा विगतांशुके ॥२५॥

विदूषक —(कणौ पिधाय परिसर्पन्) मह दासीउत्तिआ झिल्लिआ तिमिरस्स झिल्लरीव वादेता कण्णाइ वहिरेति। [मम दास्या पुत्रा झिल्ल्या तिमिरस्य झल्लरीव वादयन्त कर्णौ वधिरयन्ति ।]

गालव — तप्ताय पिण्डमिव रविं क्षिपति काललौहिकोऽम्बुनिधौ ।
धूम तमोऽस्य शङ्के सूत्कार-भिल्लिझाङ्कारम् ॥२६॥

सुमित्र —इत पश्यतु देव —

अस्तमस्तकचरे दिवाकरे,
हा कथं कुमुदिनीहृदीशितु ।
आस्यमस्य करवाणि सम्मुख,
निर्मिमील नलिनीति लज्जिता ॥२७॥

कृष्ण —सखे, पश्य पश्य

तिमिरमयनीलशाटीनकलितपाटीरबिन्दुसदृशेन्दु ।
तिमिराभिसारिका सा विगलितहृसाऽभवत् प्राची ॥२८॥

सुमित्र —देव, क्रमेण क्रमेलककण्ठकडाररुचिनिचयरञ्जितसान्ध्ये रागे विरते उन्मिपत्सु दलद्दलनिवहचलदलिपटलपेपीयमानमकरन्देषु कुमुदेषु समानदुःखतया नलिनीमाश्वासयितुमिव तटात् तटान्तर सञ्चरत्सु प्रियविरहखेदजन्याक्रन्दभीपितनक्रेषु चक्रेषु नीडोन्मुखेषु विहगेषु स्वस्ववासोत्कण्ठितेषु वनचारिषु निद्रातन्द्रालुषु प्राणिषु दरालम्बितजीवेषु जीवञ्जीवेषु मान-प्रसादपरवशवनिताहुङ्कारमुखरेषु वलभीगृहेषु इतस्तत सञ्चरन्तीषु दूतीषु चन्द्रशालापरिष्कारपरासुपरिचारिकासु, उरीकृतनीलपटासु कुलटासु, पिनद्धकनकमणिकासु गणिकासु, प्रवर्तितासु परित प्रदीपकलिकासु अकाण्डमेव स्खलतीव नभसस्तमोगुणो देवाना, प्रसरतीव प्रसाधनविधौ चिकुरोत्करो दिगङ्गनानाम्, स्फुरतीव नीलपटावगुण्ठनविधिर्भुवाम्, पिनद्धेव गरुडमणिभूपा रोदसी, प्रसृतेव कामिजनजयाय भगवतो मकरकेतो कुञ्जरराजिरिति धिय जनयन्नञ्जनाद्रित इव, गिरिकन्दराभ्य इव, गहनादिव, असतीकटाक्षमहस्रादिव, खलजनमन सन्तानादिव, आविर्भवत्कलुपमय इव, मोहमय इव, अज्ञानमय इव, शक्रमणिमय इव, नीलोत्पलमालामय इव, स्वर्ग इव, स्वच्छन्दसञ्चरत्कौशिक कलिकाल इव, लुप्तवर्णविवेको,

दिवस इव खचितद्योतसुभगो, अनीतिभागिव तेजोरहितो, अनङ्ग इव नयनहारी, योगीव समीकृतोच्चावचस्थिति, रागीव कान्तारागप्रवृत्तस्तिमिरोदधि कामपि वलामतिक्रम्य वर्धते। यस्मिंश्च न मही, न द्यौर्न दिशो, न रोदसी, न तरवो, न नगा, न निम्नानि, न विहगा, न मनुजा, न पशवो नयनपथमवतरन्ति।

कृष्ण —(परितो विलोक्य)

अनध्यायस्तादृक् निखिलमहसामुद्भवभृता,
निषेधो नेत्राणां प्रसरणविधि कौशिकदृशाम्।
तिरोभावोऽर्थानामहह कुलटामोहनकला-
महाध्वान्तस्कन्ध शिव शिव जगद् व्याकुलयति ॥२६॥

विदूषक —अम्महे वलामोडिअ तेजाइ मोडिअपफुरतेण इमिणा जोदिरिंगणावद्दारेण मुह उज्जलीयदि। [अहो! वलादुन्मूल्य तेजांसि उन्मूल्य प्रस्फुरता अनेन ज्योतिरिङ्गणापद्वारेण मुखमुज्ज्वलयति।]

कृष्ण —(सस्मितम्) अपशब्दभृदेव मूर्खस्य मुखम्।

सुमित्र —इत पश्यतु देव। प्रनूमरतिमिरमकरालयडिण्डीरपिण्डपङ्क्तिरिव पुरन्दरहरिति दरीदृश्यते प्रमाद।

कृष्ण —(विलोक्य) अहो! प्रत्यासन्नोदयो भगवान् तुपारकर।
(विमृश्य)

अप्राप्तोदय एष एव तरसा जिग्ये तम सन्तति,
जीवञ्जीवकुलस्य जाड्यमहरच्चञ्चूपुटानामपि।
मौन कैरविणीगणस्य विभिदे मान मिथ कामिनो,
किं कुर्त्तामुदितस्तुषारकिरणस्तन्नैव जानीमहे ॥३०॥

सुमित्र —(ऊर्ध्वमवलोक्य)

रविरथतुलावकृष्टे तिमिरौघनमीकृते नभ क्षेत्रे।
वापयति कालहालिक. तमसो नक्षत्रबीजानि ॥३१॥

माधव — भगवन, पश्य —

यदान्तरान्तरा किमु नागमिपतोऽम्बर क्षिप्ता।
निर्मितमयीतरर्न् रात्रो निर्मांति चित्रपटीम् ॥३२॥

अपिच –

लेपिततमिस्रगोमयनीले गगनाजिरे रजनी ।
रचयति तुरङ्गमालास्ताराकपटेन पिष्टमयी ॥३३॥

श्रीदामा —वयस्य, इत पश्य –

दरकिरणावलिभरमच्छुरित शोण प्रगे परिनिखातम् ।
होतुमिवोदयमान शशिन दहन समुद्धरति काल ॥३४॥

विदूषक —(सहासम्) अवो, चदणकप्पूरफस्स-सीअलो वि अम्मिअकिरणो दहणत्तणेण इमिणा वण्णिज्जइ । ता एसो पदीविदजठराणलो हुविस्सदि । खुधिओ बह्मणो सव्व अग्गि च्चेअ देक्खइ । अह उण अत्तणो पकिदीए एव्व जाणेमि ।
[अहो' चन्दनकर्पूरस्पर्श-शीतलोऽपि अमृतकिरणो दहनत्वेनानेन वर्ण्यते । तदेष प्रदीपितजठरानलो भविष्यति । क्षुधितो ब्राह्मणो सर्वमग्निमेव पश्यति । अह पुनरात्मन प्रकृत्यैव जाने ।]

कृष्ण —(सस्मितम्) त्व तावद् वर्णय मृगाङ्कम् ।

विदूषक —सरस्सइ हक्कारेमि । (सप्रणिधान स्थित्वा) वअस्स,

सुणु — पुव्वदिसाए भालथलीए ।
चदणबिंदु विजिभइ इदु ॥३५॥

[सरस्वतीमाकारयामि । (सप्रणिधान स्थित्वा) वयस्य, शृणु
पूर्वदिशाया भालस्थले
चन्दनबिन्दुर्जृम्भते इन्दु ।]

कृष्ण —अहो, ! सरस्वतीप्रसाद ।

विदूषक —(सगर्वम् । श्रीदामान निर्दिश्य) ण हु तव वअस्सा एआरिसा ज्जेव होति ।
[न खलु तव वयस्या एतादृशा एव भवन्ति]

सुमित्र —देव, पश्य । उदयगिरि-परिसरकुरुविन्दकान्दलप्रभाजालैरिव कुमुदिनी स्वपादस्पर्शैरभिमणयतो रवे कोपैरिव तिमिरकुम्भिकुम्भविपट्टनोच्छलल्लोहित-धाराभिरिव विरहिणीनयनकोणप्रभाभिरिवालोहित पूर्वदिगङ्गनाजिनकर्णपू-

रायितैकक्रिरण ततो दुर्वर्णभल्लसवर्णकतिपयकरवारित-तिमिरवारण सम्प्रति प्रतिककुभ सञ्चारितमयूखनिवहबहलप्रभापटलपूरणै वर्षद्भिरिव पटीरद्रव किरद्भिरिव घनसारक्षोदानुद्धूलयद्भिरिव पटवासधूली प्रसारयद्भिरिव मुक्ता-चूर्णानि कलयद्भिरिव वर्णान्तरशून्या विरञ्चिरचना सुधालिप्तामिव स्फटिकघटितामिव धौतोत्तरीयप्रावृतामिव रोदसी कुर्वन् नभस्तलमलङ्करोति मृगलाञ्छन । यस्य च प्रसरति महसि क्षीरसारिणीमिव विशिष्य प्रसूनानीव तरव पुण्डरीकानीव सरासि दधति ।

कृष्ण —(परितो विलोक्य । सहर्षम्) अहह,

आरुण्य दधता ततो निपतिता किं चारुणी सेवना-
दभ्युद्गीर्णमनेन कर्णगुरुणा प्राक् पीतमन्धन्तम ।
यावत्तावदुदञ्चदशुपटलीव्याजस्फुरन्मार्जनी
सङ्घातै प्रणयीव निह्नवपरो जैवातृको मार्जयत् ॥३६॥

गालव — भगवन्,

ऋक्षार्भकैरन्वनुगम्यमानौ,
शकुन्तकोलाहलकैतवेन ।
मिथो दिवारात्रमिमौ रवीन्दू,
तिरस्क्रिया व्योमतले रमेते ॥३७॥

कृष्ण — वयस्य, स्वोत्कर्ष सर्वमपि सुखयति । यत —

अपहाय रागिणीमपि सन्ध्या मामेति शिशिराशु ।
इति मुदितेव तमिस्रा तारापुलकान् समुद्वहति ॥३८॥

(क्षण निर्वर्ण्य)

गालव — सन्ध्यानले परिनिधाय शशाङ्कबिम्ब,
भ्राष्ट्रे नु भर्जयति माधवनी दिगेषा ।
श्रोहीनमन्ददलमानविकीर्णलाजा—
स्तारामिषेण गगने परित पतन्ति ॥४०॥

कृष्ण —(क्षण निभाल्य)

सन्ध्यानले गगनभाजनग विपाक,
ताराचर तिमिरनाशनहेतुभूतम् ।
चन्द्राङ्क (त) स्सरमुदीक्ष्य विहङ्गराव-
कौलीनत किमनुशोचति कालमन्त्री ॥४१॥

विदूषक —वण्गिद वण्णिद णिअरुआणुरुव । सुणु-एव्व वण्णीअदि । [वर्णित वर्णित निज-रूपानुरूपम् । शृणु-एव वर्ण्यते] (सर्वे सस्मितस्तिमितभावेन शृण्वन्ति ।]

भरिऊग रोअसीरा कुहर णूण णिजाहि जोण्हाहि ।
उवरिट्ठिदो मिअको कौंदरपाएहि पहइतो ॥४२॥

[भरित्वा रोदस्यो कुहर नून निजाभिर्ज्योत्स्नाभि ।
उपरि स्थितो मृगाङ्क आवर्तयने पादै प्रहरन् ॥]

कृष्ण —साधु वयस्य साधु । दूर बुद्धि प्रसाद प्रापिता ।

विदूषक —सुण्णतो जणो वि । [शृण्वन्त जना अपि] (पुरोऽवलोक्य) वअस्स, पेख्ख पेख्ख-

जोण्हाणलपक्खालिअ-गअणअले दिण्णदिट्ठीए ।
पीईसपाणकज्ज हा विसुमरिअ चओरीए ॥४३॥

[वयस्य, पश्य पश्य-

ज्योत्स्नानलप्रक्षालित-गगनतले दत्तदृष्ट्या ।
पीयूषपानकार्यं हा विस्मृतं चकोर्या ॥]

श्रीदामा —(क्षण विमृश्य) प्रदोषरक्तेन रोहिणी गच्छता ज्येष्ठामासादयता मूलमतिक्रमता शशिना-

अत्रेर्नेत्रमलेन लाञ्छनभृता लीनेन वारानिधौ,
स्वैर मन्दरपादपङ्क्तिविकटाघाताहतोर्विभ्रता ।
जग्धेन त्रिदशैर्विभज्य बहुश क्षीणेन लोको यथा,
रज्यत्वेन तथा न पद्मपतिना—

(विमृश्य) अथवा- कष्टोऽनुरागक्रम ॥४४॥

गालव- —भगवन्, मैव मैवम् । यत - राम इव लक्ष्मणाञ्चित, कृष्ण इवानुराधागामी, विलासीव कुवलयोल्लासितकर, तरुरिव रुचितचकोरकश्चक्राङ्कभिन्नशकुन्त इव मनसा जात कस्य न मदयति मनो मृगाङ्क ।

कृष्ण —(समन्ताद् अवलोक्य । सहर्षम्)

प्रतिदिनमय नाय नाय मुघोदधित सुधा,
गगनविपणि चन्द्र सान्द्री चकोरचमूरिभाम् ।
करनलिकया चञ्चच्चञ्चूपुटा परिलेहयन्,
वणिगिव पुरो विक्रेतु नु प्रसारयति स्फुटम् ॥४५॥

गालव —(विलोक्य) सम्प्रति जगति-

'विगन्तिमुरमिन्युस्रोतसा पूरिता नु,

श्रीदामा — प्रसृमरहरहासारोपसङ्गोपिता नु ।

विदूषक —ण खुहु — अमरणरवइकित्तिफारफालियेय,

[न खलु — अमरनरपतिकीर्तिस्फारस्फालिकेयम्]

सुमित्र — दधिजलनिधिलीलालम्बिनी भाति सृष्टि ॥४६॥

विदूषक —वअस्स, ता लहु गदुअ णिअवह्मणीए सआसादो कूर लोणअ अ गेण्हिअ आअच्छामि । जण इमिणा दहिणा उअराणलस्स आहुदि णिव्वत्तेम्मि । [वयस्य, तल्लघु गत्वा निजब्राह्मण्या सकाशाद् भक्त लवणञ्च गृहीत्वा आगच्छामि । तेनानेन दध्ना उदरानलस्याहुतिं निर्वर्तयामि ।] (सर्वे हसन्ति)

(प्रविश्य कञ्चुकी)

कृष्ण —इतर क्व नारीनिवह ?

कञ्चुकी —नातिदूर एव रुक्मिणीदेवीमुख्य पुरन्ध्रीकदम्बम् ।

कृष्ण -(विमृश्य) सुमित्र, त्वमशून्य कुरु स्वनियोगम् । वयमपि तेनैव पथा भामामाननपुरस्सर सम्भावयामो भामिनीनिवहम् ।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

तृतीयोऽङ्क ।

★ ★ ★

अथ चतुर्थोऽङ्क ।

(तत प्रविशति कामिनीकदम्बम्)

कृष्ण —(विलोक्य । सानन्दम्) वयस्य, पश्यसि पुर सरकञ्चुकिनिचयकलितराजतालीदण्ड पाकसुगन्धितैलानिलनासीरचरदासीसहस्रवलितवेल निर्मलनिर्यद्रत्नरश्मिशवलवासोरेणुना जनिततरङ्गरङ्ग सजल लावण्येन, सचन्द्र मुखेन, सामृत स्मितेन सप्रवाल दन्तच्छदेन, समौक्तिक रदमण्डलेन, सशुक्तिक कपोलेन, सकम्बु कण्ठेन, सशैल स्तनेन, सलत भुजेन, सशैवल रोमलतिकया, सावर्त नाभिना, सपुलिन जघनेन, सदीप नितम्बेन, सरम्भमूरुभि, सहस कटकेन, सकमल चरणेन, सरत्न नखै, सपन्नग वेणीवल्लेन, [illegible] कटाक्षै, सधन्वन्तरि प्रेम्णा [illegible] नारीनिवह [illegible] ।

विदूषक —अय [illegible] । [illegible]

यस्य पवनान्दोलितोत्पलकोटि - नृत्यप्रवृत्तमधुकरसदृशा कटाक्षा प्रसारितविविधरत्नकिरणमीलिता गगननले कलिन्दगिरिनन्दिनीव महेन्द्रधनुरिव वृत्तपद्मपुण्डरीकनीलोत्पलसदृशाभिरिव दिशासु तासु यक्षकर्दमाङ्गराग इव महत्स्वेव वृक्षेषु वसन्तश्रीमिव स्थलीषु चित्रकर्मेव तव कण्ठे वैजयन्तीव मम शीर्षे परिणयसमयदीयमानमानशेखरमिव कुर्वन्ति ।]

कृष्ण —(सस्मितम्) वयस्य, सत्यमासामपाङ्गभङ्गपरम्परया वैजयन्त्येव बद्धोऽस्मि । (किञ्चित पुरोऽभिसर्पति)

रुक्मिणी —(अपवार्य) हजे माहविए, इदो दिण्णदिट्ठी अज्जउत्तो आअच्छदि । [सखि माधविके, इतो दत्तदृष्टिरार्यपुत्र आगच्छति]

माधविका —णहु णहु । वहलपरिमलपडला बहुदरमहुअरझआरमुहरसिहरस्स पडतपराअपुजपिंजरिअफडिअमणिघडिअचत्तरोव तभमदकवोदपोदचओर - परहुअरमणिज्जस्स पारिजाअतरुस्स अहिमुह तत्तभव पचलिदो जउणाहो । [न खलु न खलु । वहलपरिमलपटलो वहुतरमधुकरझङ्कारमुखरशिखरस्य पतत्पराग - पुञ्जपिञ्जरितस्फटिकमणिघटित - चत्वरोपान्तभ्रमत्कपोतपोतचकोर - प्रभृतिरमणीयस्य पारिजाततरोरभिमुख तत्रभवान् प्रचलितो यदुनाथ ।]

रुक्मिणी —ता वअपि तहिं च्चेअ गच्छेम्ह । [तद् वयमपि तत्रैव गच्छाम ।] (इति सर्वास्तथा कुर्वन्ति । कृष्ण प्रणम्य यथोचितमुपविशन्ति ।)

कृष्ण —(अपवार्य । भामा प्रति सहासम्) अयि प्रोषितमाने,

> आविष्करोति कर्त्तार दृक्कोणमरुण यदि ।
> कथ ते तन्वि वदन चन्द्रमा इति गीयते ॥१॥

(भामा सलज्ज सगौरव सस्मितञ्चाधोमुखी तिष्ठति)
(विनोदय) अयि प्रिये,

> क्षणमाविष्कृतमाना क्षणमभिदृष्टप्रसादमाधुर्या ।
> घननयननिर्मोकवती शशाङ्कलेखेव मा हरसि ॥२॥

विदूषक —एत्तिअं एव्व बहुमदं । [illegible] रुप्पिणी देवीए [illegible] । [एतावदेव बहुमनम् । तया [illegible] देवी न [illegible] ।]

तथापि षट्पदस्यैक माधवी काऽपि जीवितम् ॥६॥

विदूषक –(अपवार्य) वअस्स, अण्णाओ वि तिख्खकडक्खेहिं पेख्खदि। [वयस्य, अन्या अपि तीक्ष्णकटाक्षैः पश्यन्ति।]

कृष्ण –(परिक्रम्य। काञ्चिदवलोक्य) वयस्य, अनया–

पश्चान्निबद्ध सुदृशालकाली-
गुच्छो न बध्नाति मनासि केषाम्।
निसर्गजिह्मस्य मलीमसस्य,
युक्त स्वबन्धेषु परावमर्श ॥७॥

(अन्या प्रति)

तव लम्बितकुन्तकावली,
दरदृष्टाननरोचिरोचित।
मम नेत्रचकोरकोऽचरत्,
तिमिरान्तश्चरचन्द्रिकाचयम् ॥८॥

(अपरा सस्पृहमवलोक्य)

अव्याहत वरारोहे पङ्कजत्व दृशोस्तव।
पक्ष्मप्रान्तपरिष्वक्तकज्जलग्नेच्छपङ्कयो ॥९॥

वयस्य, न कथ नयनपथ मरीसरीति मरीतिग्क्षिविक्षेपैरनङ्गाणुगाना परिकृतमनोजनिर्बाधा राधा।

विदूषक —दूराहितो दीसइ माणसिणीव्व केसरक्खअतलम्मि तत्तहोदि मिअव्व - पडत वाहुधेत्तरी गहिआ। [दूराद् दृश्यते मनस्विनीव केसरवृक्षाधस्तत्रभवती मृगीव पतद्व्याहुपाशा गृहीता।]

कृष्ण —(ससम्भ्रमम्) क्व सा क्व सा ?

विदूषक —एदु एदु भव। [एतु एतु भवान्]

कृष्ण —(परिक्रम्य। अवलोक्य च) वयस्य, किममुष्या ... पश्यामि ? यस्या हि मम–

चेतो निकृन्तति मयि प्रभुर्निर्विशेष-
मस्यै नम कृतवति प्रथमानुरागे ।
न्यग्भङ्गुरीकृतविलोचनमादराव-
हेलाविलं नमितमेककराम्बुजेन ॥१०॥

विदूषक —तुम पेक्खिअ कुडिलावगेण रत्तपोम्मराइहिं व्व अच्चेदि। [त्वा प्रेक्ष्य कुटिलापाङ्गेन रक्तपद्मराज्येव अर्चयति।]

कृष्णः —(सहसोपसृत्य)

तत्राधिरोहत्यय चित्तमार्ग,
सम्भावना यस्य वरोरु कुर्याम् ।
मानञ्च पश्ये किमकारणं व,
कार्योद्गति शास्त्रदृशामभीष्टा ॥११॥

अपि च — श्रयति नवानपराधे मयि सुतनो ! कस्य वा हेतो ।
केरलकुरङ्गनेत्रा चिकुरावलिचातुरीनयनम् ॥१२॥

तदलमनेन लीलाप्रत्यूहभूतेन मयि मानोज्जृम्भितेन ।

(इति पादयो पतितुमिच्छति)

राधा —(कराभ्यामवधृत्य) णव्व उइद पुआरुहेसु जणेसु अदिसइद । जइ भामाप्पमुहासु तुम्हाण चेदवुत्ती ता किमणेण मुहमेत्तराएण गहिएण । [नैवमुचित पूजार्हेषु जनेष्वतिशयितम् । यदि भामाप्रमुखासु तव चेतोवृत्तिस्तत् किमनेन मुखमात्ररागेण गृहीतेन ।]

कृष्ण —साधु वय शाखामृगतुला नीत्वोपलब्धा ।

विदूषकः —तत्तहोदीए अह वण्णिदो । ता तुम्हे दुवे वि गहिदहिअअराआ हुविअ रास पउत्तेह । [तत्रभवत्याऽह वर्णित । तद्युवाभ्या द्वाभ्यामपि गृहीतहृदयरागौ भूत्वा रास प्रवर्तयतम् ।]

राधा —(सस्मितम्) अज्जणाराअणेण किदो विवेओ । [आर्यनारायणेन कृतो विवेक ।]

कृष्ण —(राधाया अधर धृत्वा)

दरनमिताधरमध्यगरेखामधुराधरे तवाहरति ।
सारिणिरिरोच्छ्रितानाममृताना कल्पना विधिना ॥१३॥

(इति पातुमिच्छति । राधा मुख व्यावर्तयति ।)

कृष्ण –(निपुण विलोक्य)

दरलम्बितचिकुराङ्कुरशिखाविषक्तैगनाभितिलकस्ते ।
सुन्दरि ! युवजनमनसा मनोजनिक्षेपणी श्रिय वहति ॥१४॥

राधा —अज्जउत्तस्स प्पणएण कह वा सभावइज्जइ ? [आर्यपुत्रस्य प्रणयेन कथ वा सम्भाव्यते ?]

कृष्ण —(गाढमालिङ्ग्य परिचुम्ब्य च) प्रिये, सर्व युक्तमेव सम्भाव्यते ।

हरिताभिरिव स्निग्धश्यामाभि सुखसवित्रीभि ।
त्वद्दृष्टिभि सुनयने ! रज्येऽह ग्रन्थिलाभिरपि ॥१५॥

(इति ता करे धृत्वा उत्थायाश्लिष्यन्नेव परिक्रामति)

विदूषक –अह पुट्ठीण एक्कलो ण आअमिच्छामि । गेह गदुअ बह्मणी आलिगिअ तुम व्व रासम्मि भवामि । [अह पृष्ठत एकाकी नागमिष्यामि । गृह गत्वा ब्राह्मणीमालिङ्ग्य त्वामिव रासे भवामि ।]

कृष्ण –एह्येहि त्वामपि कयाचिद् भुजिष्यया योजयामि ।

(इति तेन सह परिक्रामति)

गालव –(सकरतालमुत्प्लुत्य । साश्चर्यहासम्) भगवन्, पश्य पश्य । प्रतिक्रान्तमेकैक कृष्णदेव । क्वचित् स्वकचग्रहै, क्वचिदाश्लेषै, क्वचिद् दन्तपदै, क्वचिन्नखक्षतै, क्वचित् परिहासै, क्वचिच्चुम्बितै, क्वचिदुच्चचुचूकाभिमर्शै, क्वचिद्भुजवल्लीवेल्लितै, क्वचिन्नृत्यै, क्वचिद् वाद्यवादनै, क्वचिद् गानै, क्वचित् काव्यनाटकाख्यायिकाव्याख्यानै, क्वचिच्चतुरङ्गै, क्वचित् पाशै, क्वचित् पुष्पावचयै, क्वचिज्जलक्षेपै, क्वचिद्दोलाविलासै, क्वचिन्मल्लयुद्धै, क्वचिदधरसुधाग्रहै, क्वचिन्मिथ श्लिष्टाङ्गुलिभ्रमणै, क्वचित् समस्यादानपूरणै, क्वचित् पतत्रिकुलत्रासनै, क्वचिन्नानाबन्धयुतरतिमुग्धै, क्वचित् तिरश्चीनाभि, क्वचिद् रतान्ततान्तवनितापरिचरणै, क्वचिन्मानिनीचरणपातै,

मनस्विन्या अग्रचरणलोठितमौलि ।

मनस्विन्या परमुखालिङ्गने प्रसभदत्त ।
वेणीतलप्रलम्बे तवोरसि धारितर्वाणतस्नेह ॥१८॥

इति खडिदाए उवलहिज्जदो ण म आलवदि । [इति खण्डिताया अभिलपन् न मामाजराति ।] (पर गत्वा) एलो वि [एषोऽपि]

लम्बिकुन्तलसहासिकावशा-
दस्तु ते नयनयोरराालिता ।
हा पचेलिमसुधासवर्णया,
त्वद्गिरा क्व समशिक्षि सा गति ॥१९॥

इदि माणनो का वि अहीरहुढेल्ली ण म मणम्मि वि आणेदि । हहो सव्वे वि समाणरूअवेमा हरिणा दीसति । ता कि एद इदआलिअ अह काज-व्वूहो, उद माआ, अहुवा दासीएउत्ता भुत्ताहविअ म भीसअदि । [इति मानयन् कामप्याभीरयोषिता न मा मनस्यप्यानयति । हहो सर्वेऽपि समानरूपवेशा हरयो दृश्यन्ते । तत् किमिदमिन्द्रजालिकम्, अथ कायव्यूह, उत माया अथवा दास्या पुत्रा भूता भूत्वा मा भीषयन्ति ।] (क्षण विमृश्य) पिअवअस्साणुका-रिणो रत्तिचारिणो एदे च्चेअ । ता पिअवअस्स हकारिअ एदाण दाणि सति-प्पआर अण्णेसेमि । [प्रियवस्यानुकारिणो रात्रिचारिण एते एव । तत् प्रियव-यस्यमाहूय एतेषामिदानी शान्तिप्रकारमन्वेषयामि ।] (इति हस्तमुद्यम्य) अह-वा अह जेव्व सिह बधिअ दडकठ्ठेण एदाण अवणेहस्स । [अथवाऽहमेव शि-खा बदध्वा दण्डकाष्ठेन एतानपनेष्यामि ।] [इति दण्डकाष्ठमुद्यम्य ताडयितु-मिच्छति । कृष्ण दण्डकाष्ठ करेणावष्टम्भयति ।]

विदूषक —अवह्मण्ण अव्रह्मण्ण । गहिदो ह्मि महकेअरिआए दासीए उत्तेण भूदेण । ता परित्ताअदु परित्ताअदु प्पिअवअस्सो । अज्जाआरहिअ ण वह्मणाण गव्व उव्व-हिस्म । [अब्रह्मण्यम् अब्रह्मण्यम् । गृहीतोऽस्मि महाकेसरिणा दास्या पुत्रेण भूतेन । तत् परित्रायता परित्रायता प्रियवयस्य । अद्यारभ्य न ब्राह्मणाना ग-र्वमुद्वहिष्ये ।]

कृष्ण —(अश्रुतमिव दण्डकाष्ठ कर्षन् काञ्चिदङ्गना प्रति)

युवजनचित्तोज्जयिनी रुचिरमहाकालमणियुक्ता ।

(अपरा प्रति सहासम्)

श्यामा अपि कुटिला अपि केशा काञ्चीस्पृशो मुक्ता ।
परमानन्दविधात्री काञ्ची कस्मान्नु मुच्यसे सुतनो ! ॥२४॥

गालव —(विलोक्य) भगवन्नुपसंहृतनानारूपस्तत्र भगवान् वैयाकरण इव कृतैकशेषो दृश्यते ।

श्रीदामा —(स्वगतम) स्वाद्वैतविभूति स्फोरयति तत्र युज्यते सर्वम् (प्रकाशम्) औपमिकी वेला तदुपरतो रासरसाद् वयस्य इदानीमिति मन्महे ।

विदूषक —कहि पिअवअस्सो ? (विलोक्य सत्वरमुपसृत्य च)वअस्स, दिट्ठिआ वअस्सेण जीवतो अह दिट्ठोह्मि (वयस्य, दिष्ट्या वयस्येन जीवितोऽह दृष्टोऽस्मि ।)

कृष्ण —कि तव ?

विदूषक —तुए कहि पि गदम्मि दुट्ठभूदेहि तुह रूव धरिअ अह अहिहदो इमिणा वुढ्ढिठ-एण रक्खिदो ह्मि । [त्वया कुत्रापि गते दुष्टभूतैस्तव रूप धृत्वाऽहमभिहतोऽनेन वृद्धेन रक्षितोऽस्मि ।]

कृष्ण —कि नायुधीकृतमब्रह्मण्यम् ।

विदूषक —तेणच्चेअ एदस्स सआस पाविदोह्मि देवेण । विभादकप्पाए विहावरीए ओहीणेसु तेसु तुम दट्ठूण ओससिद मे प्पाणेहि । [तेनैवैतस्य सकाश प्रापितोऽस्मि दैवेन । विभातकल्पाया विभावर्या अहीनेपु तेपु त्वा दृष्ट्वा उच्छ्वसिता मे प्राणा ।]

कृष्ण —कथ विभातकल्पा विभावरी ? (विलोक्य)

नीत समुद्र यादोभिर्भानुमानिति चन्द्रमा ।
नक्षत्रजालसयुक्त पततीव गवेषितुम् ॥२५॥

श्रीदामा —(विभाव्य)

अनायि प्रसभ भानुरनया चरमा दशाम् ।
इतीव पश्चिमामाशा चन्द्र पतति लोहित ॥२६॥

गालव — अनुगम्य परापतिपु कथमपि तारा नभ सरस्तीरात् ।
आपृच्छतीव चन्द्र शकुन्तकोलाहलै प्रवसन् ॥२७॥

(पुरोऽवलोक्य) अहह, प्रियजनावलोकाय काष्ठाकारा अपि चेतन्ते वनिता ।
यत –

यास्यत्यद्य द्विजमणिर्मम गृहानित्युद्गतानन्दथु-
स्तारापर्युषितप्रसूननिकर सम्मार्जयन्ती मुहु ।
सन्ध्यारागकुसुम्बिताम्बरवती सङ्केतवेलामिव,
प्राची वासकसज्जिकेव वयसा कोलाहलै शसति ॥३०॥

(विभाव्य । सस्मितम्)

आकाशाङ्गणसीम्नि शीतमहसा नक्षत्रमुक्ताफला-
न्याकीर्णान्यवचुण्य शान्तिविभव निर्वास्य त दूरत ।
शसन्तीति जरागमुद्गतमससन्ध्यानुरागच्छलात्,
प्राची वारविलासिनीव पुरतश्चण्डाशुमुत्प्रेक्षते ॥३१॥

गालव —भगवन्, इतोऽपि रमणीय वर्तते । तथा हि–

सितखगकृतलेहे चक्रचञ्चत्समीहे,
कलितविरहिमोहे नेत्रपीयूषदोहे ।
विसृमरमधुगेहे गन्धसम्भिन्नदेहे,
सरसिरुहसमूहे षट्पदो मोहमूहे ॥३२॥

सत्यभामा —(अपवार्य एका प्रति) सहि, पेक्ख पेक्ख । माणसिणीए व्व सोणाए पुव्वदि-
साए हीरिदाइ णक्खत्तमोत्ताहलाइ उवेच्छतो ससको गयणगणाहितो सपद
विविहविविक्किररुदच्छलेन उवक्कोसन्ती सेलसिहरतरिदेण रइणा दरपसर-
तकरेण छित्ता खणे खणे पमण्णा होइ । [सखि पश्य, पश्य । मनस्विन्या
इव शोणया पूर्वदिशया हृतानि नक्षत्रमुक्ताफलान्युपेक्षयन् शशाङ्क गगना-
ङ्गणात् साम्प्रत ता विविधविविष्किररुतच्छलेन उपक्रोशन्ती शैलशिखरान्त-
रेण रविणा दरप्रस्फुरत्करेण स्पृष्टा क्षणे क्षणे प्रसन्ना भवति ।]

एका —एक्कस्सि माणसिणी कह अवरस्सि अणुरज्जेइ ? [एकस्मिन् मानवती कथ-
मपरस्मिन् अनुरज्यते ?]

सत्यभामा —ण वण्णिद चेअ अज्जउत्तेण णेमित्तिआ । (ननु वर्णितमेवार्यपुत्रेण विशेषत)

[illegible]व —(सहासम्) सुणिद सुणिद सव्वाण वि माणसिणीण एसो च्चेअ । (श्रुत श्रुत

सर्वासामेव मानवतीनामेष एव ।) (इत्यर्धोक्तौ)

भामा —(सस्मित) चिट्ठ रे दुट्ठबह्मण, कदा वि पडिस्ससि गोअरेण समो तुम मह गोअरे । (तिष्ठ रे दुष्टब्राह्मण, कदापि पतिष्यसि गोचरेण समस्त्व मम गोचरे ।)

कृष्ण —(विलोक्य काञ्चिन्मुग्धा प्रति) सुन्दरि, पश्यसि ।

अदिवाकरमस्ततारक गलितेन्दु क्षणमीक्षते नभ ।
गतबाल्यमदृष्टयौवन तव चाम्भोरुहलोचने वय ॥३३॥

(विलोक्य महर्षम्) कथ ममैकया कलया प्राचीललाटे प्राचीनपद्मरागललाटिकाश्रियमुद्वहन् उदयगिरिशिखरमारुरुक्षु पद्मिनीवन्धु ।

गालव —भगवन् पश्य पश्य—

मामन्तरा कथमिय जगती विभाती-
त्युद्ग्रीवमन्तरितविग्रह एव भानु ।
ईषद्दलन्किरणकैतवक्लृप्तहास ,
पश्यन्निव प्रणयत शनकैरुदेति ॥३४॥

श्रीदामा — प्रवृन्दारुवृन्दारकालीकदेशारखलन्मञ्जुमन्दारवृन्दाञ्चिताङ्घ्रि ।
नमामि त्रिलोकीकृते साक्षिभूत, तमिस्रातमस्तस्कर भास्कर तम् ।३५।

(इति भानुमभिवन्द्य । कृष्ण प्रति)

य स्वर्णनिर्मितविटङ्कधियाऽवलम्ब्य,
केलीशुका निपतिता अपि सश्रयन्ते ।
शर्माणि वो दिशतु घर्मघृणे स कोऽपि,
जालान्तरालपतित प्रथमो मयूख ॥३६॥

(पुनर्विलोक्य) कथ प्रव्यक्तमकलमण्डलो भगवान् मरीचिमाली । वयस्य, पश्य पश्य—

पिष्टातकैरिव विलिप्य दिशो विभाग,
हैम निदाघमहस घटमादधाना ।
उद्यत्कराङ्कुरनवीनदलावृताङ्ग ,

प्राची तमोविलयशान्तिमिवाकरोति ॥३७॥

गालव —भगवन्, पश्य पश्य–

नतसङ्गादुदयमवाप्य पश्चिमाशा,
यातोऽसीत्यहह रुषेव लोहितश्री ।
अङ्गार सपदि नु खादिर खराशु,
रेभुक्षी क्षिपति हरिस्तुषारभानौ ॥३८॥

विदूषक —एण्हि गुरुसिस्साण मनीसा जालीअपोल्लिअच्चेअ प्पसरदि ण उण साहिच्च-णिरुत्तवण्णणम्मि । (इदानी गुरुशिष्ययोर्मनीषा सरन्ध्राया पोलिकायामेव प्रसरति न पुन साहित्यनिरुपितवर्णने ।)

कृष्ण —कथ साहित्ये निरुच्यते ?

विदूषक —(सगर्वम्) ण कहिस्स । सव्वे वि तुह्म मह विज्ज गेण्हिदु पउत्ता । (सस्मरणमिव) अहवा मए अच्चुत्तमा विज्जा बह्मणीए सआसे ठाविदा थोआ मह सआसे चिठ्ठदि । त चेअ पभासइस्स । सुणोदु पिअवअस्सो – "पुव्वदिसादिअमडल वहुलखडअ । गअणखप्परे कुणई णिब्भरे ॥ [क] (३९)

[न कथयिष्ये । सर्वेऽपि यूय मम विद्या गृहीतु प्रवृत्ता । (सस्मरणमिव) अथवा मया अत्युत्तमा विद्या ब्राह्मण्या सकाशे स्थापिता स्तोका मम सकाशे तिष्ठति । तामेव प्रकाशयिष्ये । शृणोतु प्रियवयस्य —
पूर्वदिशादिवसमण्डन्न वहुलखण्डलम् । गगनखर्प रकरोति निर्भरम् ॥३९॥]
(सर्वे हसन्ति)

श्रीदामा —कथ हस्तयुगमारुढो भगवान् गभस्तिमाली । वयस्य, तदनुजानीहि गृहपति-शुश्रूषायै ।

विदूषक —ण घरिणीए भण । [ननु गृहिण्या भण ।]

कृष्ण —सखे, ह्य एवागतो भवान् किल । गृहपति शुश्रूषयितु न प्रजावत्यपि समर्था ।

विदूषक —परघरपइ त्ति । (परगृहपतिमपि)

श्रीदामा —(सप्रश्रयम्) तथाप्यरण्यौकसो हि वयम् ।(सस्नेहम्) सखे, चिराय भव-

दृर्शनविधुरयोरनयोर्नयनयोरुत्कलिकयोपढौकितो भवदन्तिकम् । तत् सम्पन्नोऽनयोर्मनोरथ । परन्तु मुषितवाह्येन्द्रियप्रसर न यावन्मनसा गृह्यसे तावत् कुतो मे निवृ'ति । तदिच्छाम्यहृ भवद्दर्शनावलोकनमुधामारवर्पस्यावग्रहायितुम् ।

कृष्ण —(आत्मगतम्) सम्पादितचरोऽस्य मनसो भाव । तद् गच्छतु । (प्रकाश सस्मितम्) वयस्य, यद्यस्मत्प्रजावतीवदनदर्शनलालमा तरलयति वयस्य तर्हि नोपरोद्धुमुत्सहे । (सविमर्शम्) अहह ! स्निग्धजनविश्लेषो जन वक्तव्यमूढ करोति । तथाहि– गच्छेति पारुष्य, मा गच्छेति प्रभुताभिनयो , यथेच्छमनुतिष्ठेति औदासीन्यम्, आगत्य साधु वय सम्भाविता इत्युपचार न किञ्चिदस्माभिरुपकृतमिति स्वशाठ्यपौनरुक्त्य, पुनरपि दर्शनदानेन सम्भाव्योऽय जन इति वृथादर , तन्न जाने प्रवत्स्यमाने त्वयि युक्त वक्तुम् ।

श्रीदामा — किमधिक नु सखे मम मानसे,
विहरसे कृतहसपदस्थिति ।
परमुदञ्चतु मा हृदयान्तरे,
तव कदापि हरे मम विस्मृति ॥४०॥

कृष्ण —(सविनय सप्रणयस्मितञ्च) तदात्मान विस्मरिष्यामि ।

श्रीदामा —तदनुजानातु मा प्रियवयस्य । कस्तृप्यत्यमृताना तथाप्यतिवर्तते कापि वेला । (कृष्ण पादयोर्निपत्य श्रीदाम्ना निरुध्यमानोऽपि कतिपयपदान्यनुव्रज्य सखेद सपरिवारो निष्क्रान्त ।)

श्रीदामा —(गालवेन सह परिक्रम्य सहर्षमात्मगतम्) वित्तार्थनाप्रेरितमनसोऽपि मे यद्वयस्यो नापूपुरन्मनोरथ तद्युक्तमेव रचितवान् ।

यत — पीतया मदिरया प्रमाद्यति,
स्पष्टयैव धनसम्पदा जन ।
तच्छमस्य परिपन्थिनीमिमा,
सङ्गृहीतुमपि क समुत्सहेत् ॥४१॥

गालव —भगवन् चिरेण मिलितस्य भवद्विधस्यापि वयस्यस्य नोपायनदर्शन[illegible] कृष्णदेव ।

श्रीदामा —(स्वगतम्) वटु खल्वयम् । तदेन प्रत्यनग । (प्रकाशम्) [illegible]

श्वर्यमैरेयमत्तामजर्यपर्यवसान प्रेम । सत्यपि तस्मिन् क्वचिद् बद्धमुष्टिता प्रतिबद्धा न जरीजृम्भत्युदारता । मम च–

बहुलाव्ययसमुदायादासादयत कमप्यर्थम् ।
तुहिनपदतुल्यरूपात् कृपणादपि वेपते काय ॥४२॥

गालव —यद्येव तर्हि कथमार्यया प्रेरितो भवान् 'गमय वयस्य सभाजयितुमिति' ।

श्रीदामा —(सविमर्शविषादम्) वत्स, लाघवकारण हि स्त्रिय । तथा ह्येता
"हरन्ति सहसा पु सा प्रज्ञया सह गौरवम् ।"

गालव —भगवन् आर्यया गृहो ाकरणोपयोगाय भवानप्रेरि तादृशवयस्यमनुसर्तुम् । तत्रैव विधे वृत्ते वृत्ते कथमपराधिनी मन्त्वान उपालभते तपस्विनीम् ।

श्रीदामा — वत्स किमात्थ –

कृत्वा लघ्निमान् भूय तृणवत् प्रक्षिपन्ति च ॥४३॥
तदनया नतादपेतया दशामिमा प्रापितोऽस्मि ।

अथवा-

प्रेरयति दिष्टमिष्टानिष्टे कष्ट यथा यथा रभसात् ।
प्रसरति मानसवृत्तिस्तथा तथा जन्मिनामवशम् ॥४४॥

(किञ्चिद् गत्वा । पुरोऽवलोक्य) कथमुटजस्थाने पुटभेदनमिव दृश्यते ?

(सचिन्तम्) हन्त ! वराकी ब्राह्मणी किमवस्था भवेत् ?

गालव —भगवन् किमैन्द्रजालिकमेतद् उत कस्यापि मायाऽथवाऽस्मन्नयनापाटवमथ मतिभ्रम उताहो तात्त्विकमिति किमाचार्येण निरधारि ?

श्रीदामा —(विमृश्य) वत्स, प्राय केनापि श्रीमदमन्थरेण रूपशालिनी ब्राह्मणीमपहृत्य स्वावासपत्तनमकारि पर्णशालास्थानस्थायुकम् ।

गालव —कदाचित् पर्णशाला हित्वा रचित भवेत् पुटम् । तद्यावत् गवेषयाव ।

श्रीदामा —तथा कुर्व । (इति परिक्रामत) वत्स, इतो दीर्घविशिखामारूढौ स्व । एप शृङ्गाटकगामी पन्था । इतो राजभवनम् । पुरश्च दृश्यते चन्द्रशाला । क्वाऽत्र पर्णशाला ? (विभाव्य) न प्रसरति मनीषा मनीषाजुषामपि

विपरीते वेधसि कार्याकार्ये। अस्माकञ्च दैवमञ्चति प्रातिकूल्य सर्वथा। अपरथा क्वास्मिन् जने दौर्गत्यगति, क्व प्रवृत्ति कृष्णदर्शनाय, क्व पर्णशालाविच्छेद, क्व प्रियया वियोग प्रसरेत्। (सशोकम्) हा प्रिये, हा माग्निहोत्रसहचारिणि, हा मन्निमित्तमनुभूताकिञ्चनत्वदुःखे ? हा सतीव्रतैक - तीव्र-तापसहे, क्व गतासि ? का दशा प्रपन्नासि ? केन नीतासि ? कथ वा तत्र रमसे मा विना ? देहि मे प्रतिवचनम्।

गालव. —भगवन्, किमकाण्ड एव तादृशधैर्यधारिधुरीणेन तत्र भवता भवता वैक्लव्यमालम्ब्यते ?

श्रीदामा —वत्स, द्वितीयाश्रमपरिपन्थी नाय धैर्यविषय। (सहर्षम्) अथवा अनुकूलमेव दैवेनाचरितम्। यत प्रव्रज्यावस्थामनुवृत्यातिशर्मणा वाहयामि शेषमायुष।

(प्रविश्यापटीक्षेपेण कञ्चुकी)

कञ्चुकी —(प्रणम्य) आर्य, सविनयप्रणाममार्यागममाय स्पृहयति आर्या।

श्रीदामा —को भवान् ?

कञ्चुकी —आर्यपादमूलोपजीवी प्रेष्यजन।

श्रीदामा —कथमस्मत्पादमूलोपजीवी। आश्चर्यकरो वच त्रम।

गालव. —भगवन्, किमेतत् ?

श्रीदामा —वत्स, एवमेव प्रतार्य पौरपुरन्ध्रीभिरपह्रियन्ते विपश्चित।

गालव —अयि भो, केन प्रेषितो भवान् ?

कञ्चुकी —अस्मत्स्वामिन्या आर्यया।

श्रीदामा —वत्स, किमेन पृच्छसि। एष तावदवरोधनरोधनो वर्षधर।
तादृशीना कुलटाना प्रेरणया वञ्चयति पुरुषान्।

कञ्चुकी —(स्वगतम्) एष तावद् दरिद्र कुरूप आर्यया किमित्यानयेति भण्यते। कथमयमनुनेय। (प्रकाशम्) स्वामिन् आर्यया, चिराय प्रतीक्षते। तदनुगृह्णातु भवान् स्वदर्शनदानेन।

श्रीदामा —(सक्रोधम्) अपसर्प तृतीयप्रकृतिपासनपरे ते पुमासो येषा चेतासि त्वा-

दृशचेटद्वारा पासुला वशयन्ति ।

गालव —भगवन्, यावत प्रवृत्तिमुपलप्स्ये । (त प्रति) अयि भो, किमभिधा तवार्या ?

कञ्चुकी -वसुमत्यभिधाना तत्रभवती ।

गालव -(अपवार्य) कथमस्मदार्याभिधासवादिन्याह्वा ?

श्रीदामा -एकाभिधा कति न सन्ति ?

कञ्चुकी -किमेव विचारणयैवातिपात्यते काल । प्रत्यासीदत्यार्या भवद्दर्शनतलित नयनद्वन्द्वम् ।

श्रीदामा —(सामर्षम्) धिङ् मूर्ख, के वयम्, का तवार्या, किमर्थमवसीदन नेत्रयोस्तदपसर शर्मणा ।

गालव —(अपवार्य) भगवन्, क्षण क्षम्यताम् । सवादिन्येव कथा दृश्यते । यावत् तत्त्वमुपलप्स्ये । (त प्रति) भो, पुरा एकमत्रोटजमासीत् । तत्स्थाने कथमय पुरस्योद्गम, किन्नामकमद, क प्रशास्ता, तस्य च तवार्यया कीदृश सम्बन्ध ?

कञ्चुकी —प्रसिद्धमेवैतत् । पूर्वमत्र श्रीदाम्नो द्विजस्याश्रमपदमासीत् । तस्मिश्च दौर्गत्याभिभूते धनप्रत्याशया द्वारकेश द्रष्टु गते तेन च सर्वान्तर्यामितया भावज्ञेन तत्कालमुपहूय विश्वकर्माण तद्द्वारेण कारितम् उटजस्थाने तन्नाम्ना नगरम् ।

गालव —किमिद श्रीदामपुरम् ?

कञ्चुकी —अथ किम् ।

श्रीदामा —आश्चर्यमिव ।

कञ्चुकी —तद्दर्शनभया आर्यया वसुमत्या तदागमनमुत्प्रेक्षमाणया कतिपयरात्रमीक्ष्यतेऽत्र व्यापार । तयैव युवा द्वारवतीगामिपन्थानमतीत्येद नगरमाश्रयन्तौ विलोक्य मन्मुखेन समाकारितौ ।

गालव —भगवन्, त्वदगामिन्येव कथाप्रवृत्ति ।

श्रीदामा —धिङ् मूर्ख, बाढम् ईदृक्प्रतारणवचोनिचयैं श्रीदामा धर्मात् प्रच्युतो भविष्यतीति जानीषे ।

गालव.—नहि नहि भगवन्, ननु ब्रवीमि विप्रकृष्टत एव दृष्टायामपि तस्या न प्रच्यवते धर्म इति ।

कञ्चुकी—युक्तमाह वटु ।

श्रीदामा—(सदन्तपेप परिक्रम्य) सिद्ध्यतु ते मनोरथ ।

(इति निष्क्रान्ता सर्वे)

चतुर्थोऽङ्कः ।

  

अथ पञ्चमोऽङ्कः

(नेपथ्ये)

भो भो चतुपचतीयो ककणचाणेण शिरितास-णकर तट्ठ पज्जेति । ता पितूशअ शाराअण पतिअ गणनजट शज्जफामा तेपि अहग्गारेह । एप्प फणदि तुह्मे । च अण्णाण पि गेरिशी आणट्टीत्ति दा हगेमि । शुणाह-गरिणो पात्तिणो वट्टिणो गूपरिणो फूमिमक्केण पच्चदु छट्टि यचा शद्दाइ शच्चाइ गुणतु । चाप णिपेतेमि तारआणाहश्शत्ति । [भो भो यदुवशदीपो गगनयानेन श्रीदामनगर द्रष्टु पर्येति । तद् विदूषक सारायण वन्दिन कनकचण्ड सत्यभामा देवी आकारयति । इत्थ भणन्ति युष्मान् - यदन्येषामपि कीदृशी आज्ञेति तद् वदामि । शृण्वन्तु - करिणो वाजिनो पत्तिनो कूवरिणो भूमिमार्गेण व्रजन्तु झटिति यथा शब्दानि सत्यानि कुर्वन्तु । यावन्निवदयामि द्वारकानाथस्येति ।,]

(तत प्रविशति विदूषक वन्दिसत्यामहित आकाशयानेन कृष्णश्च)

कृष्ण—वयस्य, चिरेण मिलित श्रीदामा निशामेकामुपितस्तत्रैव गत इति सोत्कण्ठमिव मे मानसम् ।

विदूषक —किं तहिं चित्तं जहिं रमेइ पुरुसो रमेइ तहिं ति विसेसदा सिरिसोहाए सरिसो तारिसो वअस्सो। [किं तत्र चित्तं यत्र रमति पुरुषो रमेति तस्मिन् इति विशेषतः श्रीशोभया सहितस्तादृशो वयस्यः।]

कृष्ण —(सस्मितम्) सर्वत्र वक्रोक्तिप्रवणता कुटिलमतेः।

विदूषक —(विमानवेगं निरूप्य) वअस्स, मेहमंडलं फालिअ पइट्ठेण इमिणा विमाणेण विज्जुसिरिणाहिणा पफालिआ चादअमंडली। [वयस्य, मेघमण्डलमुत्फाल्य प्रविष्टेनानेन विमानेन विद्युच्छिरोणाहिना प्रक्षालिता चातकमण्डली।]

कृष्ण —(विलोक्य) वयस्य, पश्य विमानम्।

विभाति पार्श्वे चरतां घनानां,
विर्दभिनानामचिरप्रभाभिः।
मध्ये द्रुतस्वर्णविदूरक्लृप्त-
विलम्बमानं प्रतिसीरमेतत् ॥१॥

अपरमिह कौतुकम्—

विमानपालीषु विघट्टनेन,
परिच्युतान् वारिकणान् घनेभ्यः।
पातुं प्रवृत्तान्यपि चातकानां,
कुलानि वेगाद् विफलीभवन्ति ॥२॥

(किञ्चिदुच्चैः विमानगतिं निरूप्य) वयस्य, पश्य पश्य—

आकृष्यते तु केनापि सपर्वतवनावनी।
अधरताद् सुरवर्त्माऽपि शनकैः सन्निधाप्यते ॥३॥

विदूषक —ही ही भो किं एदं ईसाणदिसाभागम्मि पव्वइगुरुणो मालइ कुसुमसेहरो व्व दीसइ। (सहर्षम्) आ मुणिदं मुणिदं हिमगिरिट्ठिदाणं रक्खसाणं भक्खणाअ कूगो रइदो। [ही ही भो किमिदमीशानदिशाभागे पार्वतीगुरोर्मालतीकुसुमशेखर इव दृश्यते।
(सहर्षम्) आ मनितं मनितं हिमगिरिस्थितानां रक्षसां भ[illegible] भक्षो रचितः।]

कृष्ण —(सस्मितम्) धिङ् मूर्ख, कैलासोऽयम्।

विदूषक —किं कलासो जहिं सकरो वसइ ? [किं कैलास यत्र शङ्करो वसति ?]

कृष्ण· —अथ किम् । यत्र च—

प्रेम्णार्धसङ्घटितयो शिवयो पुरस्तात्,
स्तन्यार्थिनौ द्विरदनाननकेकिकेतु· ।
एकस्तनाश्रयतयाऽहमह पुरस्ता-
दित्यङ्कताञ्चितशिव मृधमारभेते ॥४॥

सत्यभामा —तारिस पेम्म धण्णाओ वणिआओ अणुहोंति । अम्हेहि– [तादृश प्रेम धन्या वनिता अनुभवन्ति । अस्माभि -] (इत्यर्धोक्तौ लज्जया मुख व्यावर्तयति ।)

कृष्ण —(सस्पृहमवलोक्य सस्नेहमालिङ्ग्य च) अयि,

एकीकृते वपुषि देवि कथ भवेयु,
कोपप्रसादविभवानुभवा जनानाम् ।
यावन्न धर्ममहसो महसि प्रचार,
छायाभिनन्दनविधि प्रसरेत् क्व तावत् ॥५॥

माने च प्रेमाप्यतिभूमि गच्छति । स्मरसि पारिजातनिमित्त मानवत्या भवत्या तरलिकयाऽस्मदवस्था निवेदिता ।

अदर्शि चित्र चित्र श्रुतिविषयवैचम्यजनक,
यदाशाकाशावौ सुमुखि तव रूप कलयत ।
असत्यामभ्याशे त्वयि च सतताभ्यासवशतो,
विनाधार रूपग्रहणपटु तस्येक्षणमभूत् ॥६॥

इति । तत्सयोगापेक्षयापि विप्रलम्भे प्रेमातिशयो भवतीति मन्महे ।

विदूषक —ण ण जणाइ प्पिअवअस्सो अद्धघटण कादु तेणा एव्व भणादि । मारिसो उण पादघडणम्मि वि समत्थो त विण्णाण सोहग्ग बह्मणी च्चेअ पुच्छीअदु [ननु न जानाति प्रियवयस्योऽर्धघटना कर्तु तेनैव भणसि । मादृश पुन पादघटनेऽपि समर्थ तद्विज्ञान समग्र ब्राह्मणीत एव पृच्छतु ।] (सर्वे हसन्ति)

कृष्ण —(सोद्ग्रीव विलोक्य) वयस्य, किमिद प्रभापटलतिरोहितरोदसी-कन्दरोदर

पुर कल्पितपुरन्दरधनुर्विभवभर समुत्सारिततिमिर दृश्यते ?

विदूषक. —(विलोक्य विमृश्य च) ण एद अम्हाण पुरदो केणा वि गधव्वणअर वेसाणरकप्प । [नन्विदमस्माक पुरत केनापि गन्धर्वनगर विरचित वैश्वानरकल्पम् ।]

कनकचण्ड —गन्धर्वनगरदर्शनमरिष्टमिति वदन्ति सूरय ।

विदूषक —ता उवट्ठिदो तुह मिच्चू । [तदुपस्थितस्तव मृत्यु]

कनकचण्ड —प्रथम गन्धर्वनगरोपस्थितिरार्यस्यैव ।(कृष्ण प्रति) देव, देवादेशेन विश्वकर्मणा रचित श्रीदाम्न पुरमेतत् ।

कृष्ण —(सहर्षम्) कि श्रीदामपुरमेतत् ।

कनकचण्ड —अथ किम ।

विदूषक —ता सोहग्गम्मि बुड्दो णिब्रुडओ बुढ्ढओ। [तत्सौभाग्ये त्रुडित क्षुल्लको वृद्ध]

कृष्ण —(विलोक्य) अहह ! रामणीयकमस्य ।

> यत्सौधसञ्चारिकपोतचञ्चू -
> सञ्चूर्णताना बत तारणाङ्क ।
> का नाम नासीददसीयलोक -
> वितीर्णवालेयकतण्डुलश्री ॥ ७ ॥

कनकचण्ड —इत पश्यतु देव । पुरस्य विविधमणिमयसौधमरीचिनिचयकिर्मीरितरोदसीतलमध्यवर्तितयान्तराल इव शृङ्खलदण्डैर्धरितस्योपरिचरत्सुरनिकर-भारपतनभयेनेव स्वभवनशिखरैर्नभ उत्तम्भयत । क्वचित स्फटिकघटिकुतट्टिम मिलितेन्द्रनीलप्रभाभावित मितासितशोभस्य, क्वचिदन्तराजटितपद्मरागहीरभूमिपु गाङ्गसलिलप्ररूढकोकनदप्रभा - पतितमधुपकदम्वजनितलोचनलोभस्य रामणीयकम् । यत्र च दिनकरमण्डलैरिव प्राशुभि, ऋषिकुलैरिव प्रवर्तितानेकशार्ङ्ग, स्मृतिवाक्यैरिव समूलै, नृपैरिव वहुपत्रावृतै, क्रतुभिरिव सफल, पार्षद्रिकैरिव धृतप्रसूनै, मीमासान्यायैरिव सपिकाधिकरणै, मुनिभिरिव सशुकै, धनर्ग्नैरिव लक्षितसारीप्रचारै, शौण्डिकापणैरिव मधुरकुलसङ्कुलै, पादपैरुपाचितेन । अकलितस्थाणुनाप्यन्तर्धृतशिवेन, उज्झितापर्णेनापि सर्वमन्दनालयन, स्त्रीकदम्बनेव नवतुदर्शनामोदितनिचितवयसा, धीरचरन्मधु-

रुदारस्पर्शजनितमनोजनिनोद्यानेन परिवृते । सौरलोकचुम्बिभिरपि धृतचन्द्र-शालैः, जातसात्त्विकभावैरिव धृतस्तम्भैः, सम्पतिवलैरिव समत्तवारणैः, राशिभिरिव सतुलैः, वनैरिव विविधशालैः, सप्ततन्तुभिरिव कृतापूर्वद्वारैः, यतिभिरिव भिन्नदिनमणिमण्डलैः, गिरिशैरिव चन्द्रशेखरैः, क्वचित् पद्मरागभित्तिप्रभाभिर्नित्यदर्शितारुणोदयैः, क्वचिद् वज्रकुट्टिममयूखैर्दिवापि कौमुदीविलासं तन्वद्भिः, क्वचित् सान्द्रेन्द्रनीलनिकायकिरणाङ्कुरैर्धूमरेखा-धोरणीमाविष्कुर्वद्भिः, क्वचित् प्रतिरजनि रजनिकरकरनिकर-प्रतिकर-प्रसरदम्बुतुन्दिलेन्दूपलगलदमलजलप्रणालिकाभिरितजलदपटलप्रकटितप्रावृडारम्भैर्भवनैरुपचिते, हरिबाहुलताभिरिव सचक्राभिः, सतीभिरिव सत्पथवर्तीभिः, प्रभुशक्तिभिरिवावर्जितकुवलयाभिः, सिंहलद्वीपभूमिरिव पद्मिनीलालिताभिः, बालाहृदयवृत्तिभिरिव गभीराशयाभिः, प्रसादकटाक्षच्छटाभिरिव निर्मलाभिः, क्वचित् स्नानागतनागरीकुचकलणकालेयककस्तूरिकाकलुषिततया कालिन्दी-सरस्वतीसम्भेदमिव प्रकटयन्तीभिः, क्वचिद् धौताङ्गरागीकृतश्रीगन्धसारपद-गधपय पूरपरिभावनया प्रकाशयन्तीभिरिव भागीरथीजनकाननयमिनयनिधा-नतामात्मनः, क्वचिन्नियमिजनानुष्ठीयमानधर्मकर्ममनोहराभिः, उत्पत्तिभूमी-भिरिवामृतस्य, जनयत्रीभिरिव मधुररसस्य, आस्थानीभिरिव शिशिरतायाः, प्रसवित्रीभिरिव पुण्यस्य, निखिलकरणनिर्वापिकाभिर्वापिकाभिर्भरिते, विडौजसाप्यगोत्रभिदा, सुरूपेणापि धनदेन, महेश्वरेणाप्यनुग्रेण, जगत्प्राणेनाप्य-प्रभञ्जनेन, शशिनेव जैवातृकेणाप्यकलङ्किना, वह्निनेव पावकेनाप्यकृष्णवर्त्मना, विष्णुनेवाच्युतेनाप्यजनार्दनेन, त्यक्तेन पापैः, असंगीरितेन जडतया, अपरिचितेन कालुष्यैः, असन्निधापितेन दौर्जन्येन, अनादृतेन दुराचारेण, अनुगृहीतेन श्रोत्रियतया, अभ्यर्हितेन दाततया, आश्रितेन ज्ञानतया, लम्भितेन

कादयो रामरामेति पठन्ति प्रथमाक्षरशून्या अपि, न केवल दान्तस्थिति-हारिण पद्मकापविद्धा आरक्षकोल्लासिन पुष्करामृष्टशिरसो हरन्ति कुञ्जरा गतान्तवर्णा अपि। तदियमतिशेते शेषराजकामशेषराजकाह्लादिनी पातालपुरी तथा मरुत्वता पालिताम् अमरावतीम्।

कृष्ण —(सहर्षम्) अहह ! त्वरिततरमेव निरमायि विचित्रकर्मणा विश्वकर्मणा स्वनिर्मितिसर्वस्वमिय पू । यस्या च— क्वचिदाहिताग्नि-वितताग्निबहुलधूमसौरभलोभभ्रमदमरविमानसम्भृते व्योम्नि मञ्चरद्भुवनमणिमरीचिसवलनया द्यावापृथिव्योर्व्यत्यय के न मन्वते जना । अभूमिरियमचिन्त्यतया मनसोऽनास्पद दुर्निरीक्ष्यतया चक्षुषोरनाघ्रेया, गन्धप्राचुर्यादिनास्वाद्या, रसाधिक्यादश्रव्या वहलकलकलेनास्पृश्याऽनेकविधस्पर्शेन वाचारम्भणीयाऽपि वाचामगोचरा, अदृश्यापि स्वप्रकाशा क न नयति वेदान्तभङ्गीव निर्वृतिम् ।

कनकचण्ड —इत पश्यतु देवो हिन्दोलनलीलाकलना ललनाया ।

कृष्ण —(विलोक्य) अहह !

धम्मिल्लोद्वान्तमल्लीपरिमलपटलोद्भूतपुष्पन्धयाली-।
गुञ्जासञ्जाततानप्रसरवितरणाभिन्नगानप्रपञ्च ।
भूमिन्यस्तैकपादव्यतिकरणरणन्मञ्जुमञ्जीरमस्या, ।
कस्यान्त पञ्चबाणप्रणयि वितनुते नैव दोलाविलास ॥८॥

(सवितर्कम्)

पादद्वन्द्वपराहताहवदिव पङ्केरुहाक्षी मुहु,
कारङ्कारममन्ददोलनरसव्यासङ्गबद्धादरा ।
भूय प्रेक्षणकौतुकोत्करसादसावतसायित-
व्यावल्गन्मणिकुण्डलद्युतिरिय धत्ते किमुद्ग्रीविकाम् ॥९॥

कनकचण्ड —इतोऽपि वणिक्पथे पुञ्जितानां मृगमदघनसारकेशराणा परिमलपटलमिलदलिजलहनीलपटीप्रावृते मञ्चरन्मस्तानके कुरङ्गता रम्भाप्रक्रीडता काश्मीरक्षेत्रनाञ्च लम्भिना । इतोऽपि न कया वागुरायित वारविलासिन्या युवनिवहानायुवगम्य । इतोऽपि परम्परासक्तयो —

यूनोर्जयति सराग कौतुकवागञ्चितात्मसम्भवयो ।

दसिद-चाउस्समहूसम्मि विविह-रअण केसरकुसुमुक्करपकडिदसुरहिम्मि देवगणासरिससहअरी-सहस्स-कर-अल-कलिद-विविहोवहारभाअणम्मि पोम्मराअमडअम्मि मज्झत्थल - विलविदकणअ - सिखलावलविअ छम्मासमोत्तालिल्लपच्छद - पडच्छादिद - विविह-गुघच्छइसथण्णपेरत-रअणपज्जको भअ पाससठिद मोत्तिओवधाणसठविदपुट्ठो विविहभूसणछविच्छुरिददाए दुरालोओ उव्वसीरूव धिक्कारणीए रमणीए सह आलवतो मुक्कतेजोरासिपुजिदो ण तेल्लोकपहावो पुरिसो दीसइ ।

[वयस्य, पश्य । द्वयोर्भागयो द्विवर्णकर्णाभरणरत्नलक्ष्मीमूलावष्टम्भितमहीतलमिव भूषणोत्करभासुराङ्ग भासुराङ्गमिव मध्यागारे प्रभासवन्त सोत्तसवलितकचाङ्गं समुल्लसितशीर्षण्यशिखाद्वलितहारलतारञ्जित दर्शनीयश्रियमिव विस्तारयन्त वनिताकदम्ब दृश्यते । पुरतोऽपि मरकतमणिकुट्टिमोच्छलितजलयन्त्रनिष्क्रमत्सीत्कारासारदर्शितप्रावृण्महोत्सवे विविधरत्नकेसरकुसुमोत्करप्रकटितसुरभिते देवाङ्गनासदृशसहचरीसहस्रकरतलकलितविविधोपचारभाजने पद्मरागमण्डपे मध्यस्थलविलम्बितकनकशृङ्खलावलम्बितपण्मासकमुक्ताफलमत्प्रच्छदपटाच्छादितविविधगुच्छच्छविसच्छन्नायन्तरत्न--पर्यङ्कोभयपार्श्वमौक्तिकोपधानसस्थापितपृष्ठ विविधभूषणच्छविच्छुरिततया दुरालोक उर्वशीरूप धिक्कारयन्त्या रमण्या सहालपन् मुक्ततेजोराशिपुञ्जितो ननु त्रैलोक्यप्रभाव पुरुषो दृश्यते ।

कृष्ण —(निपुण विलोक्य) वयस्य, ननु श्रीदामाऽयम् ।

विदूषक —अच्चरिअ अच्चरिअ । तस्स तरिसरूवस्स वि एरिसो पभाणिवेसो त्थि । अहवा णाद - [आश्चर्यमाश्चर्यम् । तस्य तादृशरूपस्याप्येतादृश प्रभानिवेशोऽस्ति । अथवा ज्ञातम् (सम्कृतमाश्रित्य)

> अनया हि श्रिया यो न स्वभावदीर्घ,
> परसयोगान्न यो गतो गुरुताम् ।
> छन्द शास्त्र इवारिपन्नन्त्योऽपि,
> लघुगुरु क्रियते ॥ १३ ॥

कृष्ण —यथात्थ वयस्य । तद्भवतु तावदुपसर्पाम । (इति सर्वे परिक्रामन्ति) (तत प्रविशति यथानिर्दिष्ट श्रीदामा वसुमती पार्श्वस्थितसुवर्णपयद्धिकामीना नलिनी विभवतश्च परिवार ।)

वसुमती —अज्जउत्त, णलिणीए उवदिट्ठस्स गोरीवदस्स केरिसो माहप्पो ज मित्तघर पत्थिदेसु वि तुम्हेसु उअकरज्जम्मि वि विमूरतेसु तिणा अरीदो उद्दो-वआरो सदीसइज्जेव्व । गोरीए उण तुम्हा पच्छाहिच्चिअ एरिसा रइदा सिरीए सभारो । [आर्यपुत्र, नलिन्युपदिष्टस्य गौरीव्रतस्य कीदश माहा-त्म्य यन्मित्रगृहप्रस्थितेष्वपि युष्मासु उपकार्येऽस्मिन् विस्मृतेपु तयाचरित उचित व्यवहार सन्दृश्यत एव । गौर्या पुन युष्मान् प्रस्थाप्य ईदश रचिता श्रिय सम्भारा]

नलिनी —(सगर्वम्) हला, कह णु तत्तहोदी वण्णिज्जइ । जाए प्पसाएण तेरलो-क्क सक्को रक्खइ, दासरहिणा वि त च्चेअ आराहइअ समण्णातिही किदो दसमुहो । अण्ण वि तीए पसाएण च्चिअ दुवेवि लोआ करअलालोआ होंति । [सखि, कथ नु तत्रभवती वर्ण्यते । यस्या प्रसादेन त्रैलोक्य शक्रो रक्षति, दाशरथिनापि तामेवाराध्य शमनातिथि कृत दशमुख । अन्यदपि तस्या प्रसादेनैव द्वावपि लोकौ करतलालोकौ भवत ।]

(श्रीदामा अश्रुतमिव 'अनन्याश्चिन्तयन्तो मा'मित्यादि पठति)

वसुमती —ण भवामि गोरीवदस्स केरिसो माहप्पो त्ति । [ननु भणामि गौरीव्र-तस्य कीदश माहात्म्यम् इति ।]

श्रीदामा —अयि मूढे, यस्य वाङ मात्रनियमितचराचरजगज्जननकन्दस्योपनिषन्मागधीवि-धीयमानयश प्रशस्तेरादिपुरुषस्य पुरुषोत्तमस्य मायाया गौर्या माहात्म्याति-शयो वर्ण्यते । भवत्या न ज्ञायते तस्य माहात्म्यम् ।

वसुमती —जइ एव्व तुम्हे दारअ गदा वि कह ण कण्हेण सभविहा । इह च्चेअ पउत्तो हालालो । [यद्येव भवान् द्वारका गतोऽपि कथ न कृष्णेन स-म्भावित, इहैव प्रवृत्तो हालाहल ।]

श्रीदामा —(सस्मितम्) सर्वत्र विपरीत एव ग्रह स्त्रीपिशाचीनाम् । अयि मुग्धे,

गर्जति घनो न वर्षति वर्षति नो गर्जति प्रथितम् ।
जल्पति न चोपकुरुते जन उपकुरुते न जल्पति कदापि ॥ १४ ॥

तन्न जानामि तादृशाना महाशयाना चरितानुबन्धम् ।

(सानन्दमात्मगतम्)

अगृह्णन् पिप्पलास्वाद भाति यो भासवत्यपि ।

जगन्ति त जनो जातु कथ जानातु पामर. ॥१५॥

(इति सरोमाञ्च ध्यायस्तिष्ठति)

नलिनी —सहि, सच्च चेअ। ज वेदसत्थ सच्चवादीहिं पुरिसेहि भणिद [सखि,सत्यमेव। यद्वेदशास्त्र सत्यवादिना पुरुषेण भणितम्।] (इत्यक्ष्णा वारयति)

वसुमती —अह्मारिसाण इत्थिआजणाण तत्थ वि असच्च च्चेअ।
[अस्मादृशाना स्त्रीजनाना तथ्यमपि असत्यमेव।] (इत्युभे सस्मित मिथो विलोकयत)

कृष्ण —(उपसृत्य सस्नेह श्रीदामानमवलोक्य च)

स्वाङ्ग गतस्पृहतया निगृहीतसत्त्व—
मङ्ग प्रपन्नविभवात् सरजोभियोगम्।
तस्मादमुष्य शुचिशान्तविनिर्मितेव,
सलक्ष्यते हरिविरञ्चिमयीव मूर्ति ॥ १६ ॥

विदूषक —पोहेण वढ्ढावेसि। मारिसस्स वि दुल्लहम्मि बधुम्मि सत्त घरिणिम्मि रअ भोअणम्मि तम दीसइ, ता अह वि बह्मविण्हुमहेसरमओ ज्जेव्व। [पृथुकेन वर्द्धापयसि। मादृशस्यापि दुर्लभे बन्धौ सत्त्व गृहिण्या रज भोजने तम दृश्यते, तदहमपि ब्रह्मविष्णुमहेश्वरमय एव।]

सत्यभामा —अज्जउत्त, घरिणी गेण्हिअच्चेअ पज्जके उवविट्ठो एसो ता बलिअ ख्खु एदाण णेहो हुविस्सदित्ति तक्केमि। [आर्यपुत्र, गृहिणी गृहीत्वैव पर्यङ्के उपविष्टस्तद् बलीयान् खलु स्नेह एतयोर्भविष्यतीति तर्कयामि।]

कृष्ण —किमत्र वक्तव्यम्।

षोडशसहस्रवनितासन्दानितमन्मथस्य मे सुतनो।
तृप्तिर्न चेत् कथ स्यादेककलत्रस्य वा पुस ॥ १७ ॥

क्वचिद्वनितालाघवमपि तरलयति पुरुषम्। तच्च यथा त्वमेव तुलसी प्रत्यभ्यधा -

पादे निपतसि कण्ठे विलम्बसे श्रयसि तस्य मूर्द्धानम्।
सरम्भ एष यदि ते तुलसि कियानस्तु चेतनवतीनाम् ॥ १८ ॥ इति।

श्रीदामा —(विलोक्य) अये प्रियवयस्यो मे देवकीसूनु । (इति सरभस पर्यङ्काद् वतीर्य कृष्णमालिङ्ग्य पर्यङ्के उपवेशयति)

वसुमती —एहि बहिणिए , मञ्च जेअ आरोहेसु । [एहि भगिनिके, मञ्चमेवारोहस्व]
(इति सत्या महोपविशति । इतरे यथोचितमुपविशन्ति । श्रीकृष्णश्रीदामानौ मिथ कुशलानामयप्रश्न कुरुत. ।)

विदूषक. —वअस्स, दाणि वि किं कुशल पुच्छीअदि । गलिदाइ अच्छिआइ वि पढम व पल्लवनवाइ अगआइ, ता पज्जन्तथलक्खणो वि एसो दीसइ । [वयस्य, इदानीमपि किं कुशल पृच्छयते । गलितान्यक्षीणि प्रथम अपावतामङ्गानि, तत् पर्यन्तलक्षण इव दृश्यते ।]

श्रीदामा —नारायण , किं ब्रूषे ।

> पर्यस्त दौर्गत्य पर्यस्तो मे शरीरसादश्च ।
> कृपया कसद्विषतो भवोऽपि पर्यस्ततामेतु ॥ १६ ॥

(वसुमती प्रति) ब्राह्मणि, वन्दस्व गोपीपते सत्यभामादेव्याश्च पादाब्जम् । (वसुमती तथा कर्तुमिच्छति । कृष्णसत्यभामे ता निवार्याभिनन्दामीति तस्या पादयो पतत ।)

वसुमती —अहिट्ठ लहेह । [अभीष्ट लभस्व] (इति तयोराशिषमभियोजयति)

श्रीदामा —क कोऽत्र भो ।

(प्रविश्य प्रतीहारी)

प्रतीहारी —अज्ज, णाए अणुजाणाहि । [आर्य, आज्ञामनुजानीहि ।)

श्रीदामा —श्रेयस्वति, ममाज्ञया ब्रूहि गालवम् । 'अनिर्विघ्नपर्यासनागानुगाहर' । इति ।

प्रतीहारी —ज अज्जो आणवेदि [यदार्य आज्ञापयति] (निष्क्रान्ता) (तत प्रविशति परार्ध्यवसनाभरणोऽनुजीविजनदत्तोपन्यस्यमानपर्यायिकरणो गालव ।)

गालव —(विलोक्य) कथ भगवता वासुदेवस्य बन्धिवरगाकारितानि नाम..नान्यु- पकरणानि (विचिन्त्य) किमपुण्य [illegible] मविधानक भवेत् । अथवा यथोपहृतमाचार्याय निवेदयामि । ([illegible] मति)

विदूषक —(गालव विलोक्य) अम्हे ! एसो वि णडीण पुठ्ठवढ्ढाओ विअ पफालिअ-हलहलो दीसइ । [अहो ! एषोऽपि नटीना पृष्ठवाहक इव प्रस्फालित-कलकलो दृश्यते ।]

(गालव श्रीदामकर्णे एवमेव कथयति)

श्रीदामा— (सावज्ञम्) अलमिदानी कर्णवर्तिनर्तनेन । तदुपकलयोपाहृतम् ।
(गालव कृष्णश्रीदाम्नोरन्तराले सविधानक स्थापयति ।)

श्रीदामा — कतिपयपृथुकैरवापितोऽह,
त्रिभुवनवैभवपारगा विभूतिम् ।
इति कमलविलोचन प्रतीत,
पुनरिदमङ्घ्रियुगे तवार्पयामि ॥ २० ॥

(इति कृष्णायानर्घ्यरत्नानि वसनानि चार्पयति । वसुमतीहस्तेन सत्यभामा-देव्यै च ।)

विदूषक —(कनकचण्ड प्रति) ता फुड कह ण कहीअदि जो जस्स भरइ सो तस्स त्ति । अम्हारिसो ण पर भरइ अह ण परेण भरिज्जइ । [तत् स्फुट कथ न कथ्यते यो यस्य भरति स तस्य इति । अस्मादृशो न पर भरति अह न परेण भर्ये ।]
(श्रीदामा सस्मित विदूषकाय कनकचण्डाय च वसनभूषणान्यर्पयति)

कृष्ण —वयस्य ,

स्निग्ध वैभवोत्कर—विलोकनेनाञ्चितानन्द. ।
पूर्णशशिदर्शनैधितसुधोदधि हन्त हृदय ॥ २१ ॥

तत् त्वद्वैभवाशत्रिभागमाकाङ्क्षमाणे स्थान एवास्मिन् जनेऽयमभियोग ॥
(इति श्रीदामहस्तादावर्ज्य सर्व प्रतीच्छति)

श्रीदामा —(स्वगत सगद्गदम्)

श्रुतिसीमन्तसिन्दूरीकृतपादाब्जरेणुना ।
रम्यते देवदेवेन त्वयापीतरलोकवत् ॥ २२ ॥

(प्रकाशम्) युज्यते त्वयि सर्वोऽपि स्नेहक्रमापक्रम ।

कृष्ण —किन्ते भूय प्रियमुपकरोमि ।

श्री —वयस्य, इत परमपि प्रियमस्ति । पश्य भवता -

आशैशवात् प्रणयभाजनता गतोऽसौ,
नीत कथापथमथास्य दरिद्रभावः ।
आरोपितो धनवता धुरि सम्भ्रमेण,
लोकद्वयो व्यरचि चास्य करस्थितैव ॥ २३ ॥

तथापीदमस्तु – भरतवाक्यम् —

राज्ञा द्वन्द्वपरिक्षयेण भवता राजन्वती मेदिनी,
काले वारिधरावलि कलयता धाराप्रसारादरम् ।
धर्म्ये कर्मणि, सम्प्रति प्रकृतयो बद्धानुरागोत्कर,
शर्मोर्वो प्रभजन्तु यान्तु विलय वैधक्रियादूषका. ॥ २४ ॥

अपि च —

पायम्पायमिमा भजन्तु कवयो नैलिम्पवृत्ति भुवि,
स्फीता 'दीक्षितसामराज'विदुष सूक्ती सुधारयन्दिनी' ।
किञ्चाशावनिताकपोलफलके पाटीरपत्रावली—
लीलामञ्चतु कीर्तिरिन्दुजयिनीमानन्दरायप्रभो ॥ २५ ॥

[इति निष्क्रान्ता, सर्वे]

इति पञ्चमोऽङ्क ।

रसिका रसयन्त्विमा कृतिं मधुपा मञ्जुमिवाम्रमञ्जरीम् ।
कलयन्तु न जातु दूषणग्रहिला वेदमिवान्त्यजातय. ॥ २६ ॥

॥ इति दीक्षितनरहरिसूनु– दीक्षितश्यामराजकृत
श्रीदामचरित नाम नाटक समाप्तम्[1] ॥

— ० —

१ शाके १६४५ वैशाखशुक्लप्रतिपदि रुधिरोद्गारिवत्सरे समाप्तोऽ-

श्रीदा रितस - ानु मणि ।

[अस्यामनुक्रमणिकाया क्रमेण प्रतिपद्यमाद्यपद तदग्रेऽङ्कसख्या तथा पद्यसख्या विद्यते]

मूलम्	अङ्क-पद्यसख्ये	मूलम्	अङ्क-पद्यसख्ये
अगृह्णन् पिप्पला—	(५।१५)	अक्षतमस्तकचरे—	(२।२७)
अग्रे काश्यपिना निवारित—	(१।२२)	अहत्वा तरुणानीक—	(१।३)
अज्ञातजन्ममृत्यु—	(२।६)	आकाशाङ्गण गीर्भि—	(४।३१)
अत्रेर्नेत्रमलेन—	(३।४४)	आकृष्यते तु केनापि—	(५।३)
अदशिचत्र चित्र—	(५।६)	आकैलासप्रथमशिखरा—	(१।६)
अदिवाकरमस्ततारक—	(४।३३)	आत्तरणैरलमेभि —	(१।२१)
अनध्यायस्तादृक्—	(३।२६)	आमोदभागुदित्वर—	(३।१०)
अनया हि श्रिया यो—	(५।१३)	आरुण्य दधता ततो —	(३।३६)
अनायि प्रसभ—	(४।२६)	आविष्करोति कर्तार—	(४।१)
अनुगम्य परापतिपु —	(४।२७)	आशैशवात प्रणयभाजन—	(५।२३)
अनुवन्धवशेन जन्मिना—	(२।३)	आस्थानी सद्गुणाना—	(१।८)
अनूरुकरसङ्करा—	(१।२०)	इन्द्रधनाधिपकमला —	(१।१५)
अपहाय रागिणीमपि—	(३।३८)	उत्फुल्लपद्मानि विहाय—	(१।६)
अप्राप्तोदय एप एव—	(३।३०)	उच्छलद्बहल्लोल्लोल—	(२।५)
अफलितास्वपि चन्दन —	(१।११)	उपनिपद्गहने हरि—	(३।६)
अभिनवकृतपरिणयन —	(१।१६)	ऋक्षार्भकैरन्वनु —	(३।३७)
अम्भोवाहविमुक्त—	(३।१५)	एकीकृते वपुपि—	(५।५)
अयोध्यावृत्तिश्चेत्—	(२।१)	एपाऽपि मनस्विन्या —	(०।१८)
अलमलमलमाक्षि ते—	(३।१)	कण्ठभूमौ मानजुपा—	(२।६)
अवतरति गगन—	(३।२१)	कतिपयपृथुकै—	(५।२०)
अव्याहत वरागेहे—	(४।६)	कम्बुगतफुल्लपङ्कज—	(४।३)
अन्नपातुरघर्मांशु—	(३।२२)	कानेऽस्मिन् प्रथमान—	(३।२०)

क्रामतपाठीनपुच्छ— (३।१७)
किमधिक नु मखे— (४।२१)
कुञ्चत् कल्पतरूणि— (१।७)
कुञ्जोदरे रासरसा— (४।४०)
कृताभिषेका सरसीषु — (३।६)
क्षण मध्ये स्थित्वा— (२।११)
क्षणमाविष्कृतमाना— (४।२)
गर्जति घनो न— (५।१४)
गृहीततारकुमुमस्य— (१।१९)
गृहीता मन्दपानीया— (३।४)
गृहीतो हृदये धर्म — (१।१८)
चदणगधमुहेहि— (१।१२)
चराचरान्तरा— (३।१४)
चित्ते नित्य चकास्ता— (१।२)
चिन्तयन्निव भक्ताना— (३।८)
चेतो निकृन्तति मयि— (४।१०)
छायापतौ करमञ्चार— (३।१९)
जघनतटघटत्— (१।२६)
जयाकृष्टकण्ठीरवा— (२।२)
जलधरसदृशे मुकुन्द— (१।१)
जोल्लाणलपल्लवालिअ— (३।४३)
तथ्यमकरो प्रवाद— (२।५)
तन्नाधिराहृत्यथ— (४।११)
तपो दौर्गत्ययोगाभ्या— (२।८)
तत्नाय पिण्डमिव— (२।२६)
तव लम्बितकुन्तका— (४।८)
तिमिरागमशून्याना— (२।७)
तिमिरमयनील — (३।२८)
त्वक्श्लिष्टकीकस— (१।२५)
त्वत्करजन्मा स्तम्भ — (५।१२)
दन्तान्तरालिकास्ते— (४।५)
दरकिरणावलिभस्म— (३।३४)
दरनमिताधरमध्य— (४।१३)
दरलम्बितचिकुरा— (४।१४)
द्विजपतिपाणिस्पृष्टा— (४।१६)
दिशानिर्वासितो दूर— (३।२५)
धम्मिल्लोद्वान्तमल्ली— (५।८)
नक्षत्रै शशिना— (२।१३)
पयस्त दौर्गत्य— (५।१९)
प्रतिदिनमय नाथ— (३।४५)
पादद्वन्दपराहता— (५।६)
पादे निपतसि कण्ठे— (५।१८)
पायस्पायमिमा— (५।२५)
पाहि दनुजसङ्घात— (३।७)
प्राय शकुन्तक— (४।२८)
प्राय स्नेहभृता— (३।१२)
पिष्टातकैरिव विलिप्य— (४।३७)
पीतया मदिरया— (४।४१)
पुव्वदिसाए भाल— (३।३७)
पुव्वदिसादिअ — (४।३९)
पूर्वमहीधरशिखरे— (१।२३)
प्रेम्णार्धसङ्कुटित— (५।४)
प्रेरयति दिष्टमिष्टा— (४।४१)
बहुलाव्ययसमुदाय— (४।४२)
बद्धान्तरा किमु— (३।३२)
भरिऊण रोअसीए— (३।४२)
मत्सङ्गादुदयमवाप्य— (४।३८)
मदनोपमर्दविग— (४।२२)
मराली मन्दगमने — (५।११)
मरुति धृतकदम्बे— (४।२९)
मामन्तरा कथमिय— (४।३१)
य स्वर्णनिर्मित— (४।३६)
य अन्तरात्मा भूताना— (१।१३)
यथा यथा जनो— (३।१३)
यद्यप्यस्ति लतावृन्द— (४।६)

नवरससरसिक कवि— (१।१०)
नियमितबाह्येन्द्रियतया— (१।१७)
नीत समुद्र यादोभि — (४।२५)
नीयन्ते पथिकास्यवीक्षण— (१।१४)
पश्चान्निवद्ध सुदृशा— (४।७)
परागस्थगनाल्लब्ध— (३।३)
परिष्वङ्गस्तवानेक— (३।११)
यत्सौधसञ्चारि— (५।७)
यस्त्राता जगता— (२।१०)
यास्यत्यद्य दिवामणि— (४।३०)
युवजनचित्तोज्जयिनी— (४।२०)
यूथिनि चम्पककलिका— (४।१७)
यूनोर्जयति सराग— (५।१०)
यैर्भानुना जगन्नद्ध— (३।२४)
रविरथहलावकृष्टे— (३।३१)
रसिका रसयन्त्विमा— (५।२६)
राज्ञा द्वन्द्वपरिक्षयेण— (५।३४)
लम्बि कुन्तलसहासिका— (४।१६)
लेपिततमिस्रगोमय— (३।३३)
वने लताना— (३।१६)
विगलितकलमष— (३।२)
विगलितकिरणावली— (३।२३)
विगलितसुरसिन्धु— (३।४६)
विभाति पार्श्वे चरता— (५।१)
विमानपालीषु विप— (५।२)
विवेचितगुणाभिज्ञै— (१।४)
विशददशनरश्मि— (४।४)
विश्वेश वीक्ष्यते यत्— (२।४)
वेल्लत्कल्लोलमाला— (१।५)
शोणीकृत स्वकिरणै — (१।२४)
श्यामा अपि कुटिला अपि— (४।२४)
श्रयति नवानपराधे— (४।१२)
श्रुतिसीमन्तसिन्दूरी— (५।२२)
षोडशसहस्रवनिता— (५।१७)
सन्ध्याग्निदग्धपूर्वा— (३।३९)
सन्ध्यानले गगन— (३।४१)
सन्ध्यानले परिनिधाय— (३।४०)
सवितरि ललाटतापिनि— (२।१२)
सितखगकृतलेहे— (४।३२)
सुभ्रु ममाशावरण — (४।२३)
स्वाङ्ग गतस्पृहतया— (५।१६)
स्निग्धजनवैभवो— (५।२१)
स्पृशति लता पुष्पवती — (३।१८)
हरन्ति सहसा— (४।४३)
हरिताभिरिव स्निग्ध— (४।१५)

 